ओ३म्

...मुक्ति पथ

-: लेखक :-

श्री मेला राम वेदी

प्रकाशक

वेदी प्रकाशन ट्रस्ट

१७बी/२४ देव नगर, दिल्ली

मूल्य ५० पैसे

Cover Printed at :

Prakash Madern Press New Delhi-5

ओ३म्

वैदिक मुक्तिपथ

अर्थात

प्रभु से मिलने का मार्ग
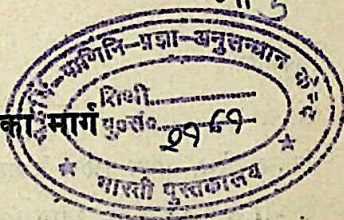
Prayer is the wing wherewith
the soul flies to Heaven

प्रार्थना वह पंख है जिस से आत्मा
स्वर्ग की ओर उड़ता है।

लेखक
मेलाराम वेदी बी.ए.

प्रकाशक
वेदी प्रकाशन ट्रस्ट

प्रथमावृत्ति
२०००
तिथि १८-२-१९६६

सृष्टि सम्वत
१,९७,२९,४९,०६६
वि० सम्वत्
२०२२

मूल्य : ५० पैसे

विषय सूची

प्राक्कथन

श्री मेलाराम वेदी द्वारा लिखित 'वैदिक मुक्ति पथ' दूसरी महत्व पूर्ण पुस्तक प्रकाश में आ रही है। इस से पहले 'ब्रह्मप्रसाद' नामक पुस्तक आपने लिखी थी। उस में आपने संध्या तथा हवन दोनों के मन्त्रों का विधिविधान एवं व्याख्या प्रस्तुत की थी। 'वैदिक मुक्ति पथ' में आपने केवल संध्या को लिया है और यह सिद्ध किया है कि संध्या मुक्ति का सब से सरल और उत्तम मार्ग है। पुस्तक में लेखक ने अपने जीवन के अनुभव के आधार पर वेद मन्त्रों के सम्बन्ध में अपनी हृदय की भावनायें प्रकट की हैं।

मैं आपसे बहुत समय से परिचित हूँ। वैदिक सिद्धांतों के सुन्दर स्वरूप का प्रकाश आपके जीवन में दृष्टिगोचर होता है। आप प्रातः और सायं २ घन्टे संध्या में व्यतीत करते हैं। उसमें आपको जो आनन्द प्राप्त होता है उसका प्रकाश अपने से मिलने वाले सब लोगों से करते रहते हैं। हमें भी उसमें से कृपया प्रसाद मिलता रहता है। गूंगे के गुड़ के समान इस आनन्द की पूर्णतया व्याख्या तो नहीं की जा सकती, फिर भी उसका कुछ आभास तो अवश्य ही सब को दर्शाया जा सकता है। 'वैदिक मुक्ति पथ' को भी जो लोग श्रद्धा से स्वाध्याय करेंगे, वे भी इस रस का पान अवश्य करेंगे।

६०/१३ रोहतक रोड
नई दिल्ली—५

विनीत
हरप्रकाश बन्धु बी. ए.

दो शब्द

संध्या आत्मा का भोजन है। शारीरिक स्वास्थ्य के लिये जैसे भोजन आवश्यक है, उसी प्रकार आत्मिक स्वास्थ के लिये संध्या प्रार्थना आवश्यक है। संध्या प्रार्थना से आत्मा में दृढ़ता तथा पाप और प्रलोभनों से लड़ने की शक्ति प्राप्त होती है। प्रभु संगति में जो तन्मयता तथा अवर्णनीय आनन्द की उपलब्धि होती है, वह अनुभव का ही विषय है।

इस पुस्तक में संध्या कैसे कब और क्यों करनी चाहिये इत्यादि विषयों पर संक्षेप से विचार किया है और यह भी दर्शाया गया है कि संध्या करते समय, प्रति मन्त्र के उच्चारण के बाद क्या २ अनुष्ठान करना है और किन २ भावनाओं को अपने हृदय में उत्पन्न करना है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक मन्त्र का पदच्छेद और पदार्थ भी किया गया है और यह भी दर्शाया गया है कि एक मन्त्र का दूसरे मन्त्र से क्या सम्बंध है। अन्तःकरण अर्थात मन, बुद्धि, चित और अहंकार क्या हैं और इसको किस प्रकार शुद्ध और स्थिर बनाया जा सकता है।

सच पूछिये तो संध्या हृदय और मन की वस्तु है, हृदय को ही पवित्र करना है। संध्या स्वस्थ शरीर, पवित्र मन, सदसद विवेक में समर्थ अन्तरात्मा, प्रभु चरणों में प्रेम तथा भगवान का आर्शीवाद है। इसमें आत्मा की उन्नति, शक्ति तथा सहायता की इच्छा से, प्रभु चरणों में अपने हृदय के उदगारों को प्रकट करना है, और पूर्ण पुरुषार्थ के

उपरान्त उत्तम कार्यों की सिद्धि के लिये परमेश्वर का सहाय लेना है। टी ब्रुक्स ने भी लिखा है :-

God hears no more than the heart speaks of, and if the heart be dumb, God will certainly be the deaf— T. Brooks.

अर्थात भगवान सिर्फ हृदय की भाषा सुनते हैं। यदि हृदय गूंगा है तो भगवान भी निश्चय से वहरा होगा। कालिृज कहता है-

He prayth best who loveth best—Coleridge—

जो सब से अधिक प्रेम करता है वह सब से उत्तम प्रभु की उपासना करता है। संध्या तथा उपासना का फल टेनीसन लिखते हैं कि 'More things are wrought by prayer then this world dreams of'—Tennyson

अर्थात प्रार्थना में हमारी कल्पना से भी अधिक कार्य करने की शक्ति है।

जिस मोक्ष प्राप्ति की हमें सम्भावना भी नहीं दिखती, वह मोक्ष मन को एकाग्र करने से मिल सकता है। सन्ध्या एक क्रिया वाची साधन है अर्थात इसमें हाथों से भी क्रिया की जाती है और मन भी वाणी के साथ लगा रहता है। केवल भावनाओं को पवित्र वनाना ही इसमें श्रेष्ठतम कर्म है। यदि हम प्रतिदिन सन्ध्या करके अपने अन्दर आत्म-ज्योति को नहीं जगा सके, और यदि हमारा व्यवहार, आचरण वैसे का वैसा रहा, न सदवुद्धि ही जाग्रत हुई और न ही सत्य कर्मों में प्रेरणा मिली, तो हमारा यह सन्ध्या करना व्यर्थ है। वास्तव में प्रत्येक बाह्य् कर्म अन्दर के यज्ञ के लिये होता है॥

मेरा अपना अनुभव है कि सन्ध्या को विधि पूर्वक करने से इस जन्म में मुक्ति मिल सकती है अर्थात मनुष्य जीवन मुक्त हो सकता है और शरीर के छोड़ने पर आवागमन से वच सकता हैं। शरत केवल मन को प्रभु चरणों में लगाने की हैं।

मन लगाने की विधि यह हैं कि हम अपनी वृत्ति को वलपूर्वक उन भावों पर रखें, जो मन्त्रों के शव्द-जाल में गुथे हुए हैं। जिस मन्त्र के अर्थ से मन भागे, उसका उचारण एक वार और कर लें। जब तक प्रत्येक मन्त्र का अर्थ हृदय में से न गुजर जाये, तव तक उस मन्त्र को न छोड़ें कुछ काल के अभ्यास से सन्ध्या हमारे स्वभाव का अंग बन जायेगी और ज्यों ही किसी मन्त्र पर मन लगायेंगे उसका अर्थ स्वयं स्फूरित हो जायेगा ॥

प्रभु करे कि पाठकों को यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध हो।

मेलाराम वेदी

१७/वी २४, देवनगर दिल्ली

विषय-प्रवेश

इस ब्रह्मांड में तीन तत्व ऐसे हैं जो नित्य हैं तथा कभी नष्ट नहीं होते हैं:—

१ परमात्मा,

२ जीव

३ प्रकृति

परमात्मा अतीव सूक्ष्म, महान्, ज्ञानवान, अनन्त सामर्थ्य-युक्त, चेतनस्वरूप, शक्तिमान परन्तु रूपरहित है। जीवात्मा और प्रकृति इसके वश में है, वह जीवात्मा को उसके कर्मानुसार जन्म फल देता है। प्रकृति को कारण रूप अवस्था से कार्य रूप में परिणित करता है, परन्तु स्वयं एकरस रहता है। सब ब्रह्माण्ड को एवं प्रत्येक वस्तु को उत्पन्न करके धारण कर रहा हैं और स्वयं उसमें व्यापक है।

जीवात्मा परमात्मा की भाँति चेतन है, शक्तिशाली भी, पर है अल्पज्ञ। इसका ज्ञान और शक्ति सीमित है। सूक्ष्म होने के कारण यह भी परमात्मा की भाँति दीख नहीं पड़ता। जगत् नियन्ता के महान् ज्ञानमय सामर्थ्य से जीवात्मा प्रकृति से संयोग होने पर पूर्व कर्मोंनुसार शरीर धारण करता है। इसी संयोग का नाम जन्म तथा वियोग का नाम मृत्यु है। चेतन जीवात्मा के संयोग से यह शरीर चेतन होता हैं। इसी चेतन

तत्व के संयोग होने से शरीर में ज्ञान और क्रिया उत्पन्न होती हैं और इसी शरीर में ही इसका अस्तित्व दिखाई पड़ता है।

प्रकृति नाम है उन छोटे-छोटे परमाणुओं का जिनके आगे टुकड़े नहीं हो सकते। यह प्रकृति जगत् का उपादान (जिसके बिना कुछ न हो सके) कारण है और तीन अवस्थाओं में रहती है।

(१) विराम अवस्था (material cause) जैसे सत, रज, तम की साम्य अवस्था अर्थात् परमाणु रूप।

(२) सूक्ष्म रूप ((Latant state) जैसे महातत्व, बुद्धि, अहंकार - पाँच तन्मात्रायें और मन।

(३) पंचस्थूल भूत (Patant state)आकाश, वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी।

आत्मा ही जीवन हैं। शरीर तो केवल आत्मा का घर है। केवल घर का ख्याल करना, और घर वाले की चिंता न करना, कितनी भूल है। वेद कहता है कि घर वाले अतिथि का ध्यान करो और अंदर की ओर देखो। इसी आशय की पूर्ति सन्ध्या का उद्देश्य है।

यह शरीर पाँच कोषों में विभक्त है।

१—अन्नमय कोषः—त्वचा से लेकर अस्थि पर्यन्त का समुदाय।

२—प्राणमय कोषः—जिसमें प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान आदि प्राणों द्वारा जीव सब कर्म करता है।

३ — मनोमय कोषः—जिसमें मन के साथ अहंकार, वाक् पाद, पायु और उपस्थ पाँच कर्म इन्द्रियां हैं।

४—विज्ञानमय कोष:—जिसमें बुद्धि, चित्त, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका हैं। जिनसे जीव ज्ञानादि प्राप्त करता है तथा व्यवहार करता है।

५—आनन्दमय कोष:—जिसमें प्रीति, प्रसन्नता, आनन्द और आधार कारण रूप प्रकृति है।

इन कोषों से ही जीव सब प्रकार के कर्म उपासना और ज्ञानादि व्यवहारों को करता है।

परमात्मा की ईक्षण शक्ति तथा अनन्त ज्ञानमय सामर्थ्य से जीवात्मा अनेक योनियों को अपने कर्मानुसार धारण करता है। मनुष्य जीवन सबसे उत्तम है क्योंकि इस में प्रभु कृपा से ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति है—मनुष्य वेद के सत्य ज्ञान को पढ़ सकता है और फिर उसके अनुकूल अपने जीवन को बना सकता है। यह केवल भोग योनि ही नहीं, परन्तु कर्म योनि भी है। जीवात्मा पिछले कर्मों के अनुसार दुःख सुख भोगता है परन्तु अपने कर्म करने में स्वतन्त्र भी है। उच्च कर्मों के द्वारा तथा सत्य विद्या को ग्रहण कर मनुष्य देव, ऋषि तथा महर्षि बन सकता है और बुरे कर्म करने पर गिर भी सकता है। यदि उसने अपने जन्म को शुभ कर्मों 'सन्ध्या, हवन, वेद पाठ' आदि से सुधार लिया तो समझो उसने अपने जीवन को सफल और सुखी बना लिया।

महर्षि स्वामी दयानन्दजी सरस्वती ने अपने अमूल्य ग्रन्थों में दुःख से छुटकारा पाने अर्थात् मुक्ति के प्राप्त करने के साधन इस प्रकार लिखे हैं:—

पहला साधन—(क) मिथ्या भाषण को छोड़ कर सत्य भाषण करना।

(ख) धर्म आचरण करना।

(ग) सत्पुरुषों के सत्संग में विवेक अर्थात् सत् और असत् धर्म और अधर्म, कर्तव्य और अकर्तव्य का निर्णय करना।

(घ) वैराग्य अर्थात् जो विवेक से सत्, असत् को जाना हो उसमें से सत्याचरण को ग्रहण और असत्याचरण को त्याग करना।

(ङ) "षटक् सम्पति" अर्थात् छः प्रकार के कर्म करना:—

१– शम:—अपने आत्मा को और अंतःकरण को अधर्माचरण से दूर हटा कर धर्माचरण में सदा प्रवृत्त रहना।

२– दम=श्रोत्रादि इंद्रियों को और शरीर को व्यभिचारादि बुरे कर्मों से हटा कर जितेन्द्रियत्वादि शुभ कर्मों में प्रवृत्त रहना।

३– उपरति=दुष्ट कर्म करने वाले पुरुषों से सदा दूर रहना।

४– तितिक्षा=चाहे निन्दा, स्तुति, हानि, लाभ कितना ही क्यों न हो परन्तु हर्ष शोक को छोड़ सम रहना।

५– श्रद्धा=वेद आदि सत्य शास्त्र और आप्त विद्वानों के वचनों पर विश्वास करना।

६– मुमुक्षत्व=विना मुक्ति के और कोई विचार न करना।

दूसरा साधन:—अष्टाङ्ग योग है। इसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का

आचरण हैं।

(१) यम पाँच हैं।

१—अहिंसा (वैर त्याग) २—सत्य (सत्य मानना, सत्य बोलना और सत्य ही करना) ३—अस्तेय (मन, वचन, कर्म से चोरी त्याग) ५—अपरिग्रहः- अत्यन्त लोलुपता स्वाभिमान रहित होना। इन पाँच यमों का सेवन सदा करें।

(२) नियम भी पाँच हैं।

१—शौच (स्नानादि से पवित्रता) २—सन्तोष सम्यक प्रसन्न होकर निरुद्यम रहना सन्तोष नहीं किंतु पुरुषार्थ जितना हो सके उतना करना, हानि लाभ में हर्ष या शोक न करना। ३— तप (कष्ट सेवन से भी धर्मयुक्त कर्मों का अनुष्ठान) ४—स्वाध्याय (पढ़ना पढ़ाना) और ५—ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर की भक्ति में आत्मा को अर्पित रखना)। यम और नियम को जानने के पश्चात् एक बात जो ध्यान देने योग्य है वह इनका अनुष्ठान है। मन, कर्म और वचन में एकता लाना।

(३) आसन—स्थिरता से, बिना थके, सुखपूर्वक, अभीष्ट समय तक बैठे रहने का नाम आसन है। प्रयत्न की शिथिलता और अनन्त की समीपता से आसन की स्थिरता बढ़ती है और आसन सुखद बन जाता हैं। इस साधन के लिये स्वस्तिक, सिद्ध, पद्म, वीर, वज्र आसन उपयोगी सिद्ध होते हैं।

(३) प्राणायाम—नाभि से नीचे के भाग तथा मूल इन्द्रिय को ऊपर संकोच करके हृदय के वायु को बल से बाहर फेंक यथा शक्ति से रोकें, फिर धीरे २ वायु को भीतर लेके थोड़ा सा रोकें, यह एक प्राणायाम हुआ। यह क्रिया करते समय प्राणायाम

मन्त्र का जप मन से करें। इससे देहगत तम की (जो उन्नतेन्द्रिय पदार्थों के देखने से आवरण रूप बना हुआ है) उसका विनाश करके मन को धारणा में स्थित रखने की शक्ति देता है। प्राणा-याम से श्वास-प्रश्वास की गति सम होकर, ध्यान और समाधियों में विघ्न नहीं पड़ता है।

(५) प्रत्याहार का अर्थ है इन्द्रियों पर अधिकार वा विजय पा लेना, अर्थात् विषय उत्पन्न हो जाय पर इन्द्रियाँ उसे ग्रहण न करें। इसमें मन बाहर के विषयों से हट कर अन्तर्मुख हो जाता है और इन्द्रियाँ भी शांत हो जाती हैं।

(६) धारणा —मन को किसी विषय विशेष में बाँध देना ही "धारणा" है। धारणा से वस्तु के बाह्य रूप का दर्शन होता है, विज्ञान नहीं होता। क्योंकि धारणा में मन की वृत्ति शाँत नहीं होती। ध्यान में प्रवेश करने के लिए धारणा को बलवती करना आवश्यक है।

(७) ध्यान—जब धारणा में ऐसी अवस्था आ जावे कि देश काल आदि का बोध न रहे, तब ध्यान लगा समझना चाहिए। लक्षित वस्तु में स्थित मन क्षण मात्र के लिए भी स्थान भ्रष्ट न हो, इसे ध्यान कहते हैं।

(८) समाधि—इस प्रवाह का अन्तिम परिणाम समाधि है अर्थात् अपनी स्थिति को भूल कर वह लक्षित पदार्थ ही दर्शन का विषय बना दीखे। इस अवस्था में पदार्थ का विज्ञान ही होता है। ध्याता को और कुछ नहीं भासता है।

समाधि चित् तथा बुद्धि तत्व की एक ऐसी सूक्ष्म अवस्था है जो पदार्थों के तत्वों का विश्लेषण करके पदार्थ को सूक्ष्म

स्वरूप का साक्षात्कार करा देती है और केवल ज्ञान ही रह जाता है। यह ज्ञान ही आत्म ज्ञान तथा मोक्ष का हेतु है।

तीसरा साधन— उपासना

मुक्ति का तीसरा साधन उपासना है। इसीलिए विद्वान् पुरुष हृदय में व्याप्त ईश्वर को निरन्तर उपासना द्वारा अपने आत्मा के साथ युक्त करते हैं।

गृहस्थाश्रम में सन्ध्या हर प्राणी के लिये अति आवश्यक है। विधिपूर्वक सन्ध्या करने से उपासक तीनों प्रकार के साधनों की पूर्ति कर लेता है। तथा यह मनुष्य को मुक्ति दिलाने में असाधारण सहयोग देती है। देखिये सन्ध्या १९ मंत्रों का समुदाय है और इन मंत्रों से उपर्युक्त साधनों की पूर्ति इस प्रकार होती है:—

पहले साधनों के अनुसार हम विवेक द्वारा सत् असत् का बोध करते हैं, सत् का ग्रहण और असत् का त्याग करना ही वैराग्य है। इस श्रद्धायुक्त सत्य का ग्रहण संध्या के उपस्थान के पहले मन्त्र में किया जाता है और इसी से हम प्रभु दर्शन और मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं, षटक् सम्पति में जो शम्, दम, उपरति, तितिक्षा, सम्पति तथा श्रद्धा आते हैं उन सबका अभ्यास भी संध्या के इन्द्रियस्पर्श और मार्जन मन्त्रों में हो जाता है। मुमुक्षत्व भी गायत्री मन्त्र में सम्मिलित है।

दूसरे साधन यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि भी हम संध्या करते समय निम्नलिखित प्रकार से करते हैं।

सँध्या से पहले मंत्र में हम अपने जीवन का उद्देश्य निश्चय करते हैं। प्रथम साँसारिक सुख, द्वितीय मोक्ष प्राप्ति इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यह सँध्या है। दूसरे मन्त्र में दस इन्द्रियाँ, (पाँच ज्ञान तथा पाँच कर्म) को स्वस्थ और यशस्वी बनाने के लिए हम यत्न करते हैं अर्थात् यम और नियम का पालन करते हैं। चौथा मन्त्र हैं ही प्राणायाम का जोकि योग साधना की दृष्टि में अत्यन्त आवश्यक है।

अघमर्षण के तीन मन्त्रों से जगत् नियन्ता द्वारा ब्रह्माण्ड की रचना को देखते हुए हम अपनी बुद्धि को समझाते हैं कि तू पाप न कर। सत्य और न्याय का पथ धारण कर। इस प्रकार से हम चित्त की वृत्तियों का निरोध करते हैं और इसी का दूसरा नाम प्रत्याहार है।

मनसा परिक्रमा के छः भागों से धारणा का अभ्यास करते हैं जब हम सब दिशाओं पर दृष्टि डालते है तो हमें प्रभु की सत्ता किसी न किसी रूप में प्रत्यक्ष होती है। अपनी वृत्ति को प्रभु चरणों में लगाना ही धारणा है।

उपस्थान के चार मँत्र तो हैं ही प्रभु के समीप बैठ कर उसमें ध्यान लगाने के। पहले मन्त्र से हम दो व्रत धारण करते हैं, श्रद्धा और सत्, जिससे प्रभु प्राप्ति हो सके, दूसरे मँत्र से प्रभु से दो आदेश मिलते हैं। वेद का पढ़ना और सृष्टि रचना को देखना। इन चार साधनों को अपनाने से हमारा रास्ता साफ हो जाता है और तीसरे मन्त्र में हम साक्षात् प्रभु दर्शन करके उसके स्वरूप को वर्णन करते हैं चौथे मन्त्र में प्रभु को देखते रहने की इच्छा पैदा होती है। इसे योग में ध्यान कहते हैं।

गायत्री मन्त्र से हम प्रभु के गुण गाते हैं और उसे अपने हृदय रूपी गुफा में अपने जीवात्मा में बिठाते हैं और प्रार्थना करते हैं कि अब प्रभु ही हमारी बुद्धियों को चलाए। इस प्रकार प्रभु आज्ञा से शुभ कर्म करके जीवन मुक्त हो जाते हैं और यही समाधि का अन्तिम लक्ष्य है।

संध्या से पूर्व कर्त्तव्य

सबसे पहले स्नान करें। स्नान करते समय पहले सिर को फिर मुँह को, पुनः पेट और निचले भाग को भिगोयें और ओ३म् नाम के स्मरण से राग, द्वेष, असत आदि को त्याग कर अपने मन को सत्याचरण से शुद्ध करें।

प्रातः तथा सायंकाल निश्चित समय पर जल पात्र को साथ लेकर जिस ओर से वायु आ रही हो उस ओर मुंह करके निम्नलिखित मन्त्र से आचमन करें।

आचमन मन्त्रः—

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥१॥ इससे एक
ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२॥ इससे दूसरा
ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयी श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥३॥
इससे तीसरा

पदच्छेदः—अमृत, उप-स्परणं, असि, स्वाहा ॥
अमृत, अपि धानं, असि, स्वाहा ॥
सत्यं, यशः, श्रीः मयी, श्रीः श्रयतां, स्वाहा ॥

पदार्थः—ओ३म्=रक्षा करने वाला प्रभु
अमृत=सर्वेव रहने वाला
उप-स्तरणम्=नीचे का बिछौना
असि=है

स्वाहा=तेरी मैं, आचमन के रूप में अपने में आहुति देता हूं।

ओ३म्=रक्षा करने वाला प्रभु
अमृत=सदैव रहने वाला
अपिधान=ऊपर का ओढ़ना
असि=है
स्वाहा=हम मन, वाणी और कर्म से अपने स्वरूप को समझ कर यह कहते हैं।
ओ३म्=रक्षा करने वाला प्रभु
सत्यम्=सत्य को
यश:=यश को
श्री:=लक्ष्मी (धन) को
मयि=मुझमें (हममें)
श्री:=आश्रय रूप से (अपूर्व रूप में)
श्रयताम्=स्थित करें
स्वाहा=हमारा यह कथन सत्य और शोभा से युक्त हो।

अनुष्ठान विधि—ऊपर लिखे तीन मन्त्रों से जल को दायें हाथ की हथेली पर तीन बार डालें और तीन आचमन करें। विधान यह है कि दायें हाथ की हथेली में जो बाजू की ओर गढ़ा है, वह ब्रह्म तीर्थ कहलाता है। आचमन ब्रह्म तीर्थ को होठ लगा कर करे, परन्तु आवाज न निकले। जल इतना लें जितना कंठ के नीचे हृदय तक पहुंचे।

भावना—आचमन से हम जल को (अमृत स्वरूप परमात्मा को) अपने अन्दर ले रहे है, अपने आप को शुद्ध और पवित्र बना

रहे हैं, आलस्य दूर हो गया है, मेदा भी अनुकूल हो गया है, शुद्ध जल के सेवन से सुखरूप अमृत की वर्षा निरन्तर हो रही है। हम स्वयं अमर हैं। और प्रभु की अमर गोद में बैठे हुए अपने गुण को बनाये रखें।

सन्ध्या से पूर्व आचमन अति आवश्यक है ताकि उपरोक्त भावनाएं दृढ़ होती चली जायें।

तीन आचमन करने के पश्चात् दोनों हाथ जल से धो लें और फिर कुशा से या हाथ से जल लेकर अङ्ग स्पर्श करें। मन्त्र इस प्रकार है।

इन्द्रिय स्पर्श मन्त्र—

ओ३म् वाङ्म आस्येऽस्तु इससे मुख को
ओ३म् नसोर्मे प्राणोऽस्तु इससे नासिका को
ओ३म् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु इससे आंखों को
ओ३म् कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु इससे कानों को
ओ३म् बाह्वोर्मे बलमस्तु इससे बाहुओं को
ओ३म् ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु इससे जाघों को
ओ३म् मेऽङ्गानि तनूस्तन्वामे अरिष्टानि सह सन्तु
इससे सारे शरीर को

पारस्कर गृह्य सूत्र १—३।२५

पदच्छेद:—

१—वाक्, मे, आस्ये अस्तु
२—नसो: मे, प्राण: अस्तु
३—अक्ष्णो: मे, चक्षु: अस्तु
४—कर्णयो: मे, श्रोत्रं अस्तु

५—वाह्वो, मे वलम अस्तु

६—ऊर्वों: मे, ओज: अस्तु

७—अरिष्टानि, मे, अङ्गानि, तनू:, तन्वा:, मे, सह, सन्तु ॥

पदार्थ:-

१—ओ३म्=रक्षा करने वाले प्रभु !

वाक्म=मेरे मुख में

आस्ये=बोलने की शक्ति

अस्तु=हो

२—नसो: मे:=मेरी नासिका में

प्राण:=प्राण शक्ति

अस्तु=हो

३—अक्ष्णो: मे=मेरी आंखों में

चक्षु:=देखने की शक्ति

अस्तु=हो

४—कर्णयो: मे=मेरे कानों में

श्रोत्रं=सुनने की शक्ति

अस्तु=हो

५—वाह्वो, मे=मेरी भुजाओं में

वलम्=बल

अस्तु=हो

६—ऊर्वोमें=मेरी जंघाओं में

ओज:=शक्ति

अस्तु=हो

७—मे=मेरे

तनुः=शरीर
मे सह=साथ ही मेरे
तन्वाः=शरीर के
अङ्गानि=सब अंग
अरिष्टानि=रोग रहित
सन्तु=हों

अनुष्ठान विधि—इस मन्त्र को पढ़ते जाएं और मुख नासिका नेत्र, श्रोत्र, भुजाओं, जंघाओं और फिर सारे शरीर पर जल छिड़कें। पहले दायें और फिर बायीं ओर की इन्द्रियों को मध्यमा और अनामिका दोनों उंगलियों से छूना है।

भावना—स्पर्श करते समय अपनी सारी मानसिक शक्ति को इन्द्रियों की शक्ति पर लगावें और ध्यान करें कि ईश्वर कृपा से इन सब इन्द्रियों में शक्ति का संचार हो रहा है।

इन्द्रिय स्पर्श मन्त्र पढ़ने के पश्चात् महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज ने लिखा है कि तीन प्राणायाम ओ३म् के जाप से करने चाहिए, इससे मन को संध्या के अनुकूल बनाना होता है। प्राणायाम इस प्रकार करें नाभि से नीचे के मूल इन्द्रिय को ऊपर संकोच करके हृदय के वायु को वल पूर्वक फेंकें। यथा शक्ति रोकें फिर धीरे २ वायु को भीतर लेके थोड़ा सा रोकें। यह एक प्राणायाम हुआ। नाक को हाथ से न पकड़ें पर मन ही मन में ओ३म् ओ३म्········ करते जाएँ।

इस प्राणायाम के बाद हृदय में प्रभु की स्तुति करें अर्थात् प्रभु के गुणों का वर्णन करके अपने अन्दर उसके लिए प्रेम उत्पन्न करें। स्तुति इस प्रकार हो:—

प्रभु तीनों कालों (भूत, वर्तमान्, भविष्यत्)में जो कुछ होता है उन सब व्यवहारों को जानता है। प्रभु संसार के सब पदार्थों को उत्पन्न करता और उनके सब विज्ञान को जानता है। प्रभु जिसका सुख ही केवल स्वरूप है जो मोक्ष और सांसारिक सुख को देने हारा है, सबसे बड़ा है। प्रभु ही सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि सब पदार्थों को धारण कर रहा है और अपने २ स्थान में चला रहा है। प्रभु ने ही ब्रह्माण्ड के वायु को प्राण, अपान की नांई किया हैं। प्रभु ने ही प्रकाश करने वाली किरण पैदा करके हमारी आँखों में देखने की शक्ति प्रदान की है। प्रभु ने सब दिशाओं को सब व्यवहारों के सिद्ध करनेके लिए बनाया है। वह ही हमारा इष्ट देव है। हम उसके बिना किसी और को ईश्वर समझ कर भक्ति न करें।

प्रभु भक्ति का भजन भी गा लिया जाए तो संध्या के अनुकूल वातावरण बन जाता है।

❋ भजन ❋

ईश्वर तुम्हीं दया करो, तुम बिन हमारा कौन है।
दुर्बलता दीनता हरो, तुम बिन हमारा कौन है॥

माता तुम्हीं पिता तुम्हीं, बन्धु तुम्हीं सखा तुम्हीं।
हमको है तेरा आश्रय, तुम बिन हमारा कौन है॥

जग को रचाने वाला तू, दुखड़े मिटाने वाला तू।
बिगड़ी बनाने वाला तू, तुम बिन हमारा कौन है॥

तेरी दया को छोड़ कर, कुछ भी नहीं हमें खबर।
जाएं तो जाएं हम किधर, तुम बिन हमारा कौन है॥

तेरा भजन तेरा मनन, तेरी लगन तेरी ही धुन।
हमको है तेरा आश्रय, तुम बिन हमारा कौन है॥

इस प्रकार स्तुति प्रार्थना द्वारा वातावरण को संध्या के अनुकूल बना कर शिखा बन्धन करें।

* * *

शिखा बन्धनः—शिखा जिसे चोटी भी कहते हैं। इसके वांधने का विधान इसलिए है कि चोटी के बाल इधर उधर न बिखरें ताकि संध्या में ध्यान लगाने की जो विधि है उसमें विघ्न पैदा न हो। साथ ही—

(१) मनुष्य के चित्त की बिखरी वृत्तियां एकत्रित होकर ध्यान की गांठ में आएँ, और बुद्धि को जिसे आत्मा की पत्नि माना गया है, आत्मा के साथ जोड़ दिया जाए।

(२) जिस जगह चोटी होती है उसे ब्रह्मरंध्र कहते हैं। इस स्थान से सारे प्राण शरीर में फैलते हैं और जब हम सो जाते हैं तो सुषुप्ति अवस्था में प्राण यहां विश्राम लेते हैं। जाग्रत अवस्था में प्राण यहां से आरम्भ होते हैं और चारों ओर फैल जाते हैं। ब्रह्मरंध्र को हाथ लगाने का तात्पर्य यही है कि हम प्राणों को वश में कर सकें प्राणों के वश में करने से ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है।

(३) श्री महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज ने लिखा है—कि "चोटी बांधते समय बालों को दायें बाएँ हाथ से खींचने पर उन हाथों का प्रकाश (पौजीटिव करेंट) और तम (नेगेटिव करेंट) चोटी द्वारा नीचे शरीर में चली जाती हैं। इससे मेरुदण्ड के मनके ऐसे सीधे हो जाते हैं जैसे सितार के तारों को एक स्वर में रखने के लिए खूँटी मरोड़ कर तारों को ऊपर खींचना और और कसना है। इस प्रकार चोटी के खींचने से मन के तीन

तारें सत्, रज और तम खींचकर सम हो जाते हैं। जब हम अपना मेरु दण्ड सीधा करके आसन लगाकर बैठते हैं तो सचमुच वह सम अवस्था हो जाती है।

४. मेरुदण्ड के इस प्रकार ठीक करने से आयु तन्तु पक्के हो जाते हैं। जिससे आयु बढ़ती है सांस कम खर्च होते हैं। विचार शक्ति और स्मृति तेज होती है।

५. ब्रह्मचर्य की इससे रक्षा होती है। जिसकी विचार शक्ति तेज हो वह संसार के लिए उपयोगी तथा धन पैदा करने के लिए पुरुषार्थी हो जाता है, इसीलिए चोटी रखना हिन्दू जाति के लिए एक चिन्ह माना गया है।

शिखा बन्धन का मन्त्र

गायत्री मन्त्र द्वारा शिखा बन्धन करें।

"ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्" ॥ यजुः ३६-३

इसके अर्थ उपस्थान मन्त्रों के पश्चात् दिये गए हैं।

संध्या प्रवेश

मन्त्र (१):—आचमन

संध्या के पहिले मन्त्र में हमारे जीवन का उद्देश्य वर्णन किया गया है—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति ! इसकी पूर्ति के लिये शरीर को सांसारिक वातावरण से अलग करना और ध्यान को प्रभु चरणों में लगाना है ।

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥ यजु ३६-१२

पदच्छेद—शम् । नः । देवीः । अभिष्टये । आपः । भवन्तु । पीतये । शंयोः । अभि । स्रवन्तु । नः ॥

पदार्थ—देवीः—दिव्य गुणों से युक्त, आपः—सर्वव्यापक परमेश्वर, अभिष्टये—मन चाहे फल (सांसारिक सुख), पीतये—और पूर्णानन्द (मोक्ष) की प्राप्ति के लिए, नः—हमें, शम—कल्याणकारी, भवन्तु—होवे (और), नः—हमपर, अभि—सब ओर से, शंयोः—शान्ति की, स्रवन्तु—वर्षा करें ।

अनुष्ठानः— इस मन्त्र को पढ़ कर तीन आचमन करें, जल को दायें हाथ की हथेली पर तीन वार डालें और तीन आचमन करें, परन्तु मन्त्र केवल एक वार पढ़ें। हथेली में जो वाजू की ओर गढ़ा है वह व्रह्म तीर्थ कहलाता है। आचमन व्रह्म तीर्थ को होंठ लगा कर करें और किसी तरह की आवाज न निकले।

भावना:— (१) आचमन करते हुए हमारी भावना यह हो कि हम मानो व्रह्म रस का पान कर रहे हैं।

(२) हमें शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शान्ति मिले— शरीर के लिए अर्थ, मन के लिए काम, बुद्धि के लिए धर्म और आत्मा के लिए मोक्ष मिले। जव तक अपनी यह भावना दृढ़ रूप दृष्टि द्वारा जल में न घुसा दें, तव तक आचमन न करें। इस प्रकार शीतल जल का आचमन राजसिक और तामसिक वृत्तियों को दवा कर सात्विक वृत्तियों को जाग्रत कर देता है।

याद रहे कि केवल भावना से कुछ नहीं वनता जब तक भावना को कार्य रूप में परिणत न किया जाये॥

आचमन क्यों करें ?

मनुष्य चूंकि असत् भाषण भी करता है, इसलिए वह संस्कार ग्रहण करने के योग्य नहीं। आचमन में यह शक्ति है कि उसे संस्कार करने के योग्य वना दे। पवित्र जल के भीतर जाने से भीतर भी पवित्र हो जाता है। आलस्य दूर होता है। गले के कफ़ की निवृति होती है। जल मेधा के लिये हितकर है और मेधा को सन्ध्या के अनुकूल बनाता

है। शुद्ध जल के सेवन करने से सुखरूप अमृत की वर्षा होती है। जल शान्ति और पवित्रता का प्रतिनिधि है।

आचमन तीन वार क्यों करें ?

इसलिए कि हमारे शरीर में तीन लोक हैं:—

(१) भूमि (२) अन्तरिक्ष (३) द्यु:

नाभि के नीचे का भाग भूमि है, जिससे प्राणियों का जन्म होता है; इससे ऊपर अन्तरिक्ष है जिसके अन्दर हृदय में आत्म दर्शन होता है; इसके ऊपर द्यु: लोक है जिसे सिर कहते हैं, इसमें दो नेत्र, दो कान, दो नासिका तथा मुख जगमगाते हैं। इन तीनों लोकों की शान्ति अभीष्ट है। शान्ति सुख दु:ख दोनों से ऊपर की अवस्था है। भूमि लोक की काम ज्वाला, अन्तरिक्ष लोक की असन्तोष अग्नि, और द्यु: लोक की विचार अग्नि को इन तीन आचमनों से शान्त करना है और इन तीन लोकों में संयम, सन्तोष और ममता को प्रभु भक्ति के लिए पैदा करना है॥

कब आचमन न करें ?

'पञ्चमहायज्ञ विधि' में श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती ने लिखा है कि यदि जल न हो तो आचमन न करें। इस का यह अभिप्राय नहीं कि हम प्रतिदिन जल के विना सन्ध्या कर लें। अभिप्राय यह है कि जल के आचमन से रहित सन्ध्या करना अथवा सन्ध्या ही न करना, इन दोनों में विकल्प हो, तो प्रथम पक्ष द्वितीय की अपेक्षा अच्छा है। ऐसी अवस्था में जब जल न मिले, सन्ध्या अवश्य करनी है, आचमन न हो सके तो न सही। सन्ध्या तो भोजन की भान्ति अति आवश्यक है।

MANTRA (I) ACHMAN

Om Shanno Devirabhishtya Apobhavantu Pitye Shanyo Rabhisra Vantunah.

Rigved 10-9-4

May the luminous all pervading Lord, lead us to attain our object of life — enjoyment of worldly things and heavenly abode. May He shower heavenly bliss from all directions.

इस प्रकार शरीर को सांसारिक वातावरण से अलग करके हम आचमन द्वारा अपनी भावनाओं को शान्त और स्थिर बनायें। अब अगले मन्त्र (इन्द्रिय स्पर्श मन्त्र) से शरीर को बाहर से कैसे ठीक करते हैं, यह बताया गया है।

मन्त्र (२):—इन्द्रिय स्पर्श

इस मन्त्र से हम इन्द्रियों को वश में करने की प्रार्थना प्रभु से करते हैं और साथ ही स्वयं यम और नियम का पालन करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। मन्त्र इस प्रकार हैं:—

ओ३म् वाक् वाक्। ओ३म् प्राणः प्राणः।
ओ३म् चक्षुः चक्षुः। ओ३म् श्रोत्रं श्रोत्रम्।
ओ३म् नाभी। ओ३म् हृदयम्। ओ३म् कण्ठः।
ओ३म् शिरः। ओ३म् बाहुभ्यां यशो बलम।
ओ३म् करतल करपृष्ठे॥

पदार्थः—ओ३म् वाक् वाक्—

हे ईश्वर! हमारी वाणी और रसना पूर्ण आयु पर्यन्त यश और बल से युक्त हो और किसी को दुःख न पहुँचाये॥

ओ३म् प्राणः प्राणः—

हे ईश्वर! हमारे दोनों नासिका छिद्रों से निकलने वाला प्राण पूर्ण आयु पर्यन्त यश और बल से युक्त हो और दूसरों के प्राण की रक्षा कर सके॥

ओ३म् चक्षुः चक्षुः—

हे ईश्वर ! हमारे दोनों नेत्र पूर्ण आयु पर्यन्त यश और बल से युक्त हों और यह लज्जा से सदा भरपूर हों ॥

ओ३म् श्रोत्रं श्रोत्रं—

हे ईश्वर ! हमारे दोनों कान पूर्ण आयु पर्यन्त यश और बल से युक्त हों और दीन-दुखियों की पुकार पहचानें ॥

ओ३म् नाभिः—

हे ईश्वर ! हमारी नाभि, जो जनन यन्त्र की केन्द्र है, पूर्ण आयु पर्यन्त शक्तियुक्त हो और हम उसे यज्ञ रूप बनावें ॥

ओ३म् हृदयम्—

हे ईश्वर ! हमारा हृदय पूर्ण आयु पर्यन्त शक्तिशाली हो और इसमें आपका निवास हो ॥

ओ३म् कण्ठः—

हे ईश्वर ! हमारा कण्ठ पूर्ण आयु पर्यन्त शक्तिशाली हो और कण्ठ की मधुरता दुखियों को रिझाने वाली हो ॥

ओ३म् शिरः—

हे ईश्वर ! हमारा सिर पूर्ण आयु पर्यन्त शक्तिशाली हो और शुभ विचारों से दूसरों का भला करने वाले बनें ॥

ओ३म् बाहुभ्यां यशोबलम्ः—

हे ईश्वर ! हमें भुजाओं के द्वारा यश और बल पूर्ण आयु पर्यन्त प्राप्त होता रहे और हम निर्बलों का आश्रय बन सकें ॥

ओ३म् करतल करपृष्ठेः

हे ईश्वर ! हमारे हाथ का तल और पृष्ट पूर्ण आयु पर्यन्त यश और बल युक्त हों और हमारा सारा ग्रहण तथा त्याग शुद्ध और पवित्र हो ॥

अनुष्ठान—मध्यमा बल की और अनामिका दान की अंगुली है। इन दोनों उँगलियों से पात्र में से जल स्पर्श करके अपने हर एक अंग को लगायें। ओ३म् वाक् वाक् से मुख के दोनों ओर, पहिले दायें और फिर बायें, दोनों उँगलियों से थोड़ा दबा कर स्पर्श करें।

भावना—सारी मानसिक शक्ति को वाणी और रसना शक्ति पर लगा दें। और ध्यान रखें कि ईश्वर कृपा से इन दोनों इन्द्रियों में शक्ति का संचार हो रहा है। यदि कोई दोष इसमें हो, तो इस दोष को पश्चा-ताप और प्रार्थना से दूर करें। यहाँ यह दृढ़ विश्वास रखना है कि प्रभु कृपा से यश और बल आ रहा है।

इस प्रकार की भावना से मन्त्र में दी इन्द्रियी को भी छूते जायें। पर इस बात का ध्यान रखें कि इससे अपनी मानसिक भावना और दृष्टि द्वारा अपने प्रत्येक अंग को (Hypnotise) हाइपनोटाइज करना है ताकि जीवात्मा इन्द्रियों के व्यापार से हटकर भक्ति मार्ग पर लग जायें।

इन दस इन्द्रियों का यश और बल बढ़ता है यम और नियम के पालन करने से :—

वाणी सत्य और मधुर बोलने से, प्राण श्वास-श्वास में प्रभु स्मरण से और दूसरों की रक्षा करने से, कान सत्य उपदेश सुनने

और दीन-दुखी की पुकार सुनने से, नाभि संयम (ब्रह्मचर्य) तथा उत्तम सन्तान पैदा करने से, चक्षुः लज्जा तथा सबको मित्र दृष्टि से देखने से, हृदय धैर्य (संतोष) तथा नम्रता से और उदारता से, कंठ शुद्ध कविता तथा उत्तम स्वर आलाप करने से, सिर बुद्धि से और विद्या दान से, बाहु अपने पर विश्वास से और दीन-दुखी का भार लेने से, करतल पवित्र कमाई से और गुप्त दान से (करुणा से)।

MANTRA (2) INDRI SPARSH

Om Vak Vak. Om Prana Prana. Om Chakshu Chakshu. Om Shrotram Shrotram. Om Nabhi. Om Hridayam. Om Kantha. Om Shirah. Om Bahubhayam Yashobalam. Om Kartal Karpristhe.

May the all pervading Lord give glory and true Strength to our tongue, Nose, eyes, ears, Nave centre, heart, throat, brain, arms, hands etc. so that we may do good deeds.

पहिले मन्त्र से अपने जीवन का उद्देश्य वर्णन करके और उसकी पूर्ति में दृढ़ निश्चय करके हमने दूसरे मन्त्र से अपनी इन्द्रियों को वलवान और यश वाली वनाया है जिससे भगवान का सच्चा भजन पूजन और आराधन हो सके ॥

क्योंकि वलहीन व्यक्ति आत्मा को पहचान नहीं सकता, परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता। अव हम तीसरे मन्त्र से अपने सव अंगों को पवित्र करने चले हैं। जव शरीर स्वस्थ और पवित्र हो जाता है तव ध्यान को एकाग्र करने के लिए आसन लग सकता है।

मन्त्र (३)—मार्जन

मार्जन कहते हैं मान्जने को, क्योंकि इस मन्त्र से इन्द्रियों को पवित्र करना हैं, इसलिए इसका नाम मार्जन मन्त्र हैं।

ओ३म् भूः पुनातु शिरसि। ओ३म् भुवः पुनातु नेत्रयोः। ओ३म् स्वः पुनातु कण्ठे। ओ३म् महः पुनातु हृदये। ओ३म् जनः पुनातु नाभ्याम्। ओ३म् तपः पुनातु पादयोः। ओ३म् सत्यं पुनातु पुनः शिरसि ओ३म् खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र॥

पदार्थ—

ओ३म् भूः पुनातु शिरसिः—

प्राणस्वरूप परमात्मा पवित्र करें सिर को

ओ३म् भुवः पुनातु नेत्रयोः—

दुःख विनाशक परमात्मा पवित्र करें दोनों आँखों को

ओ३म् स्वः पुनातु कण्ठेः—

सुख स्वरूप परमात्मा पवित्र करें गले को

ओ३म् महः पुनातु हृदयेः—

सबसे महान् प्रभु पवित्र करें हृदय को

ओ३म् जनः पुनातु नाभ्याम्ः—

जगतोत्पादक परमात्मा पवित्र करें नाभि को

ओ३म् तपः पुनातु पादयोः—

तप स्वरूप परमात्मा पवित्र करें दोनों पांव को

ओ३म् सत्यं पुनातु पुनः शिरसिः—

सत्य स्वरूप परमात्मा पवित्र करें फिर सिर को

(पुनः का तात्पर्य यह है कि सिर में विद्यमान ज्ञान का भण्डार भी सत्य हो)

ओ३म् खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्रः—

सर्वव्यापक परमात्मा पवित्र करें सारे शरीर को

अनुष्ठान—

मध्यमा और अनामिका अंगुली के अग्र भाग से बारी बारी सिर आँख, गला, दिल, नाभि, पांव, सिर और शरीर पर जल छिड़कें, पर ईश्वर के नामों का स्मरण करते करते ।

भावना—

सिर (विचारों) की पवित्रता अहिंसा है वाणी की पवित्रता सत्य है भावनाओं की पवित्रता अस्तेय है जननेन्द्रिय की पवित्रता ब्रह्मचर्य है परिग्रह की पवित्रता अपरिग्रह है	पवित्रता ही यम है
इन्द्रियों की पवित्रता शौच है वृत्तियों की पवित्रता सन्तोष है श्रम की पवित्रता तप है अध्ययन की पवित्रता स्वाध्याय है साधना की पवित्रता ईश्वर प्रणिधान है	पवित्रता ही यम है
स्थिति की पवित्रता आसन है प्राण की पवित्रता प्राणायाम है मन की पवित्रता प्रत्याहार है चिन्तन की पवित्रता धारणा है मनन की पवित्रता ध्यान है अन्तःकरण की पवित्रता समाधि है	पवित्रता ही नियम है

प्रभु इन्द्रियों को और सारे शरीर को पवित्र कर रहे हैं। अब हमारा आसन लग सकेगा और हम अगले मन्त्र से प्राणायाम करने में सफल होंगे। प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि भी बारी-बारी इस संध्या में आयेंगे।

MANTRA (3) MARJAN

Om Bhuh Punatu Shirshi, Om Bhuvah Punatu Netrao
Om Swah Punatu Kanthe, Om Maha Punatu Hredye.
Om Janah Punatu Nabhyam, Om Tapah Punatu Padyo
Om Satyam Punatu Punashirsi,
Om Kham Brahm Punatu Sarvatra.

May the self-subsistant Lord purify the head.
May the all-seeing Lord purify the eyes.
May the Blissful Lord purify the throat.
May the Great Lord purify the heart.
May the creater of all purify the Vital centre
May the stern Lord purify the feet.
Once again we pray to the Incorruptible Lord to purify the head (brain)
May the All pervading Lord purify the entire body-from end to end.

अब तक हमने अपने स्थूल शरीर के भीतर और बाहर को शांत और स्थिर बनाया है, पर भीतर का अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित अहंकार) रह गया है। इनमें से पहले मन को वश में करेंगे क्योंकि असंस्कृत मन प्रभु को नहीं पा सकता।

मन्त्र (४)—प्राणायाम

यह प्राणयाम मन्त्र है। प्राणायाम के दो शब्द हैं:—"प्राण और "आयाम"। प्राण नाम है श्वास प्रश्वास का, और आयाम का अर्थ है फैलाना या वश में करना। इससे हमने अपने दस प्राणों का (१) अपान (२) समान (३) प्राण (४) उदान (५) व्यान (६) नाग (७) कूर्म (८) कृकल (९) देवदत्त (१०) धनञ्जय का निरोध करके मन को वश में लाना है।

यह मन्त्र मार्जन की परिपूर्णता के लिए भी है:—

ओ३म् भूः। ओ३म् भुवः। ओ३म् स्वः। ओ३म् महः।
ओ३म् जनः। ओ३म् तपः। ओ३म् सत्यं।

(तैति० आ० प्रपा १०-अनु ७१)

पदार्थ—ओ३म् भूः—परमेश्वर हम सबका प्राणरूप है।

ओ३म् भुवः—परमेश्वर दुःख दूर करने वाला है।

ओ३म् स्वः—परमेश्वर सुखस्वरूप है।

ओ३म् महः—परमेश्वर महान तथा पूज्य है।

ओ३म् जनः—परमेश्वर सबका जनक और उत्पादक है।

ओ३म् तपः—परमेश्वर दुष्टों को सन्ताप देने वाला है।
ओ३म् सत्यम्ः—परमेश्वर सत्यस्वरूप है।

अनुष्ठान—

(१) प्राण को बल से बाहर फेंक कर बाहर ही यथाशक्ति रोकें।

(२) तीन बन्द लगायें।

(क) मूलबन्दः— गुदा को ऊपर सुकेड़ें जिससे अपान नीचे की ओर न निकले।

(ख) उज्जियान बन्दः— पेट को अन्दर की ओर खींचें।

(ग) जालन्धर बन्दः — ठोडी को कण्ठ में लगायें जिससे अन्दर के श्वास बाहर न जा सके

(३) यथासम्भव धीरे-धीरे वायु को भीतर लें।

(४) वायु को अन्दर भर कर यथाशक्ति श्वांस को अन्दर ही रोकें और फिर श्वाँस को धीरे-धीरे बाहर निकाल दें।

(५) प्राणायाम मन्त्र को मन ही मन में कम से कम तीन बार पढें।

(६) यह एक प्राणायाम हुआ इस प्रकार के कम से कम तीन और अधिक से अधिक इक्कीस प्राणायाम करें, नाक को हाथ से न पकड़ें।

(७) प्राणायाम करते समय आसन वह हो जिससे मेरुदण्ड सीधा रहे। यही सात्विक और पूजा में बैठने का तरीका है।

भावना—

वाहर के विषयों से और अन्दर की वासनाओं से हमारा छुटकारा हो रहा है। हमारा मन शुद्ध तथा स्थिर हो रहा है।

हम प्राण-शक्ति-सम्पन्न, विचारशील, ज्ञानवान, जितेन्द्रिय, विशाल हृदय वाले, सृजन करने वाले तपस्वी और सत्य में स्थिर, वनें।

लाभ—वैसे तो प्राणायाम के कई लाभ हैं पर सवसे उत्तम आत्मा और मन की स्थिरता है। इससे मनमें योग्यता उत्पन्न हो जाती है फिर जिस विषय में चाहें दृढ़ता से लगाया जा सकता है। महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है "प्राणायाम से आत्मा और मन दोनों स्थिर हो जाते हैं, ऐसे आत्मा के वीच में जो अ यींमी रूप से ज्ञान और आनन्द स्वरूप व्यापक परमात्मा है उसमें अपने आप को मग्न करके अत्यंत आनन्दित होना चाहिए। जैसे गोताखोर जल में डुवकी मार के शुद्ध होता है वैसे ही सव जीव अपने आत्मा को परमेश्वर में मग्न करके शुद्ध हों"।

प्राणायाम से मन की चंचलता मन्द पड़ती है और अन्त में मन का निरोध हो जाता है। मन के निरोध से इन्द्रियां अन्तरमुख हो जाती हैं। ज्ञान और क्रिया के कार्य वन्द हो जाते हैं, सव विक्षेप हट जाते हैं। आत्मा अपने स्वरूप में स्थित रहता है, प्रकाश की झाँकी प्राप्त करता है। तथा अपने अन्दर विद्यमान परमात्मा का साक्षात करता है।

प्राणायाम से विशेषतया फेफड़ों के उन भागों में जहाँ वायु नहीं पंहुँचती वहाँ वायु को पहुँचाना होता, जि से फेफड़े और रक्त शुद्ध होते है। शरीर स्वस्थ हो जाता है।

मन में जो विचार वदल-वदल कर आते हैं उन सवको हटा कर प्राणायाम मन में स्थिरता लाता है और शारीरिक तथा मानसिक उन्नति

होती है। रोग दूर, बुरी वृत्तियाँ दूर और मन काबू में आजाता है। जब का , क्रोध आदि का वेग मन को अपनी ओर खींचे चुपचाप प्राणायाम करें, बुरी वासना हट जायेगी। यह अनुभव की बात है। चित्त का मल दूर हो जाता है, हृदय में पड़े तम के आवरण का नाश हो जाता है। चित्त की एकाग्रता होने पर स्मृति बढ़ जाती है। जैसे जल के प्रवाह को एक ओर से बाँध के रोक देते हैं तब वह जिस ओर नीचा होता है उस ओर चल के कहीं स्थिर हो जाता है, इसी प्रकार मन की वृत्ति भी जब बाहर से रुकती है तब परमेश्वर में स्थित हो जाती है।

जिस मन की स्थिरता इस मन्त्र में की जाती है वह मन है क्या ? इसके जानने की आवश्यकता है।

मन

सृष्टि के रचना क्रम में "महत्" के बाद "अहंकार", फिर समष्टि अहंकार के रज और सत्व प्रधान अहंकार से "मन" की उत्पत्ति होती है। यह सत्व, रज, और तम से बना हुआ एक तत्व है। इसके बिना कोई इन्द्रिय काम नहीं कर सकती। यह बड़ा चंचल और गतिशील है। सब इन्द्रियों को क्रियाशील बनाये रखता है। ज्ञान इन्द्रियें सारा ज्ञान इसी को देती है।

यह मन प्रकाश का एक लघु-सा पिण्ड है, जिसमें दाह तथा स्पर्श नहीं है। यह सदा ही अपने स्थान पर स्थिरता से चमका करता है।

मन का सम्बन्ध सब इन्द्रियों, बुद्धि, तथा शरीर के साथ है। चूंकि यह सत्व, रज और तम तीनों गुणों वाला है, इस पर बुरे विचार उठते रहते हैं। इन बुरे विचारों को हटाना ही प्राणायाम मन्त्र का

अभिप्राय है। जीवात्मा मन से ही सब कर्म (अच्छे या बुरे) कराता है इससे सदा पुरुषार्थ करें जिससे हमारा धर्म सदा दृढ़ और अविरुद्ध हो।

"जो ईश्वर की आज्ञा अर्थात् सत्याचरण धर्म करना और उससे उलटे पाप के आचरण से नित्य डरते रहना अर्थात् ईश्वर हमारे सब कामों को सब प्रकार से देखता है ऐसा जानकर उससे सदा डरना कि जो मैं पाप करूँगा तो ईश्वर मुझ पर अप्रसन्न होगा इत्यादि गुण वाली वस्तु का नाम मन है" ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका।

मन को वश में करने के साधनः—

१. इस लोक और परलोक के सारे भोगों में उनका दोष समझते हुए उनसे छुटकारा पाना।
२. नियमों का पालन करना :— सारे काम नियम अनुसार करना।
३. मन के हर एक काम पर विचार करते हुए उसे बुरे विचारों से बचाना। ४. मनके कहने में नहीं चलना जब तक बुद्धि साथ न दे।
५. मन को सदा सत्य कामों में लगाये रखना।
६. जहाँ-जहाँ मन जाये वहाँ से हटा कर परमात्मा में लगाना। और हर जगह परमात्मा को सर्वव्यापक समझते हुए मन को जहाँ कहीं भी न जाने देना।
७. एक तत्व का अभ्यास करना।
८. नाभि या नासिका में दृष्टि स्थापित करना (एकाग्रता करना)।
९. परमार्थ ग्रन्थों का पढ़ना।
१०. उत्तम पुरुषों से मित्रता, दीनों पर दया, सज्जनों या उन्नतिशीलों को देख कर प्रसन्न होना और दुष्ट जनों से उपेक्षा वृत्ति रखना।
११. प्राणायाम करना। १२. साँस के द्वारा नाम का जप करना।
१३. अनन्य मन से भगवान की शरण होना।
१४. प्रभु नाम का कीर्तन करना।

PARANAYAM
MANTRA (4) ~~MARJAN~~

Om Bhuh. Om Bhuvah. Om Swah. Om Maha. Om Janah. Om Tapah. Om Satyam.

The Lord (whom we adore and on whom we meditate) is self subsistant, All-knowing, All bliss, All-mighty, Maker of all beings, Stern in justice and incorruptible.

इस प्रकार प्राणायाम से मन को वश में करके हम बुद्धि को कैसे शुद्ध कर सकते हैं अगले तीन मन्त्रों में बताया गया है। इन मन्त्रों को अघ-मर्षण मन्त्र कहते हैं इसलिये कि अघमर्षणो माधुछन्दस इन का ऋषि है और भाववृत्तम् इन का देवता है। भाववृत्तम् का अर्थ है भावनाओं और वृत्तियों को प्रभु आज्ञा के अनुकूल बनाना, अर्थात् बुद्धि को सम-झाना कि झूठे विचारों को छोड़ और सत्य को ग्रहण करके सद्मार्ग पर चल। ऐसा करने से मनुष्य पाप से दूर रह सकता है। पाप से दूर रहना ही इन मन्त्रों का प्रयोजन है। मन्त्र इस प्रकार हैं :—

मन्त्र (५, ६, ७)—अघमर्षण

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्याजायत।
ततो रात्र्यजायत। ततः समुद्रो अर्णवः॥

ऋ० १०-१९-१.

ओं. समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत— अहो-रात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी॥

ऋ० १०-१९-२.

ओं. सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवञ्च पृथिविञ्चान्तरिक्षमथो स्वः॥ ऋ. १०-१९-३.

पदच्छेद—ऋतम्। च। सत्यम्। च। अभीद्धात्।
तपसः। अधि। अजायत। ततः। रात्री।
अजायत। ततः समुद्रः। अर्णवः॥
समुद्रात्। अर्णवात्। अधि। संवत्सरः।

अजायत । अहोरात्राणि । विदधत् । विश्वस्य । मिषतः । वशी ॥

सूर्याचन्द्रमसौ । धाता । यथापूर्वम् । अकल्पयत् । दिवम् । च । पृथिवीम् । च । अन्तरिक्षम् । अथो । स्वः ॥

पदार्थः—अभीद्धात्–प्रभु के ज्ञानमय, तपसः– अनन्त सामर्थ्य से, ऋतम्—वेद, अधि+अजायत्—प्रकट हुआ, च—और (उसके साथ ही), सत्यम्—प्रकृति, अधि+अजायत्—कार्यरूप में प्रकट हुई, ततः—उसी ज्ञानमय अनन्त सामर्थ्य से, रात्री—महारात्री, प्रलय, अर्णवः—और जल से भरा हुआ, समुद्रः—(पृथिवी और अन्तरिक्ष का) समुद्र, अजायत—उत्पन्न हुआ। अर्णवात्—जल से भरे, समुद्रात—समुद्र के, अधि—पश्चात्, संवत्सरः—क्षण आदि काल, अजायत—उत्पन्न हुआ, विश्वस्य—सब जग को, वशी—वश में रखने वाले प्रभु ने, मिषतः— सहज स्वभाव से, अहोरात्राणि—रात्रि-दिन के विभाग को, विदधत्—बनाया।

धाता—सर्वधारक प्रभु, सूर्याचन्द्रमसौ—सूर्य-चन्द्र च—और, दिवम्—द्यु लोक को, पृथिवीं—पृथिवी को, च—और, अन्तरिक्षम्—अन्तरिक्ष (आकाश) को, अथो—और, स्व:—मध्यवर्ती लोक-लोकान्तरों को और उन लोकों में सुख विशेष के पदार्थ को (उपर्युक्त सब को), यथापूर्वम् अकल्पयत्—पूर्व के समान बनाया।

अर्थात् जैसा रचना का ज्ञान प्रभु के सर्वज्ञ विज्ञान में पहले से था उसके अनुसार। तथा पूर्व सृष्टि में जैसी जगत् रचना की थी उसके अनुसार। और जीवों के जैसे कर्म पूर्व से विद्यमान थे उसके अनुसार जीवों के शरीरों की रचना का कार्य किया। परमात्मा के भावों से भय-भीत होकर हम सिर झुकाते हैं और ऐसे ही भावों के भरोसे अपनी आत्मा को शान्त करते हैं।

अनुष्ठान—जो इन मन्त्रों का अनुष्ठान करता है, उससे पाप परे भाग जाते हैं। अतः किये हुए पापों का नाश किसी भी प्रकार नहीं होता। अनुष्ठान यह है कि हम बुद्धि को समझायें कि—

(१) प्रभु सब में व्यापक होके अन्तर्यामी रूप से सबके पाप और पुण्य को देखता है और पक्षपात को छोड़कर सत्य, न्याय से सब को फल देता है। यदि हम पाप करेंगे, तो उसके दण्ड से बच नहीं सकते। ऐसा

निश्चित जानें और ईश्वर से भय क के मन, वाणी और कर्म से पाप की इच्छा भी न करें।

(२) जिन पदार्थों के पाने के लिए हम पाप करते हैं यदि उन पदार्थों के निर्माण करने वाले प्रभु पर हम विश्वास रखें तथा प्रयत्न करते रहें तो किसी पदार्थ की कमी नहीं रहेगी। वह अवश्य देता है।

(३) जब कभी पाप वृत्ति मन को घेरे, तो कड़क कर बोलें :— मन को पतित करने वाले कुविचारो ! दूर हो जाओ, दूर भागो, परे चले जाओ; दूर के विनाश को देखो। हम इस पाप को नहीं करेंगे। अरे मन तूने पाप की ओर जाना है तो जा, हम नहीं जायेंगे। तू क्या बुरी बात बताता है। हट जा, दूर होजा।

भावना—हमें अपने किये दुराचार के परिणाम का बुरा फल भोगने को सदैव उद्यत और अपना सुधार करने पर सदैव तुला रहना है यही सच्चा प्रायश्चित है

भगवान् दयानन्द ने पञ्चमहायज्ञ विधि में लिखा है कि "सब को वश में करने वाला परमेश्वर जैसा कि उसके सर्वज्ञ विज्ञान में जगत के रचने का ज्ञान था और जिस प्रकार पूर्वकल्प की सृष्टि में जगत की रचना की और जैसे जीवों के पुण्य और पाप थे उनके अनुसार ईश्वर ने मनुष्यादि प्राणियों के देह बनाए हैं। वेद से लेकर पृथिवी पर्यन्त जो यह जगत है सो सब ईश्वर के नित्य सामर्थ्य से ही प्रकाशित हुआ है। और ईश्वर सबको उत्पन्न करके, सब में व्यापक होकर अन्तर्यामी रूप से सब के पाप-पुण्यों को देखता हुआ पक्षपात छोड़ के सत्य न्याय से

सब को यथावत् फल देता है, ऐसा निश्चित जान के ईश्वर से भय क के सब मनुष्यों को उचित है कि मन, कर्म और वचन से पाप कर्मों को कभी न करें इसी का नाम अघमर्षण है। अर्थात् ईश्वर सब के अन्तः-करण के कर्मों को देख रहा है इसी से पाप कर्मों का आचरण मनुष्य लोग सर्वथा छोड़ दें।" प्रभु ने सत्यमें श्रद्धा और असत्य में घृणा सब मनुष्यों के हृदय में स्थापित की है, लेकिन मनुष्य झूठ बोल कर उसके भोग से बचना चाहता है। वेद कहता है :—

हे मनुष्य ! तू सीधा रास्ता धारण कर– आत्म-निरीक्षण कर और पाप की चोट से बच। सृष्टि और प्रलय का चक्र चल रहा है। सूर्य-चन्द्र चलते हैं, दिन-रात का चक्र देख। जड़ चेतन रूप संसार को परमात्मा समय के चक्र से घुमा रहा है। प्रभु की महानता को पहचान। अपनी तुच्छ हस्ती को देख कर अभिमान दूर कर और अभिमान से ही उत्पन्न होने वाले पाप से बच।

इसमे सन्देह नहीं कि अघमर्षण मन्त्रों से सृष्टि विज्ञान बीज रूप से वर्णित है, पर सृष्टि के ज्ञान को जानने तथा मनन करने से आत्मा में प्रभु की महती महिमा की अनुभूति होती है और इस अनुभूति से पाप का नाश होता है। चित्तवृत्तियों का निरोध और मन की एकाग्रता उत्पन्न होती है।

पाप पर आक्रमण के दो उपाय हैं, एक प्रतिपक्ष भावना का उत्था-पन और दूसरा पाप की जड़ का उन्मूलन। सब पापों की जड़ अविद्या व अज्ञान है। इसे दूर करें।

बुद्धि

प्रश्न—बुद्धि क्या है ? जिसके समझाने के लिए अघमर्षण मन्त्रों की आवश्यकता जानी गई है।

उत्तर—सृष्टि के उत्पत्ति काल में ब्रह्म के ईक्षण रूप संकल्प से सर्व प्रथम जो एक प्रकाशात्मिक तत्त्व (महत्तत्त्व) उत्पन्न होता है उसके तीन भाग हो जाते हैं। तब इनमें से एक "समष्टि चित्त सत्व" के रजोगुणी अंश से समष्टि बुद्धि तत्व बनता है, इसका एक-एक अंश व्यष्टि बुद्धिके रूपसे प्रत्येक देह के साथ विद्यमान है। सृष्टिके समस्त पदार्थोंके, रूप, रस आदि विषयों को तर्क-वितर्क द्वारा कांटछांट कर वास्तविक रूप को दर्शाने वाला तत्त्व बुद्धि कहाता है।

बुद्धि का निवास-स्थान ब्रह्मरिन्ध्र है। इसका सम्बन्ध मन के द्वारा सदा हृदय से बना रहता है जिसमें चित्त, अहंकार, सूक्ष्म प्राण सहित जीवात्मा विराजमान है। बुद्धि पंच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा शब्द स्पर्शादि विषय, और कर्म इन्द्रियों के द्वारा सब कृत कर्मों को मन के द्वारा प्राप्त कर के, और उन्हें तर्क की तुला पर तोल कर, एक स्थिर निर्णय कर देती है।

मन की भाँति बुद्धि भी सत्, रज और तम से बनी हुई है। इसलिए इसके धर्म तीन प्रकार के हैं—

(१) सात्विक (२) राजसिक और (३) तामसिक।

जब ज्ञान, धर्म, वैराग्य, ऐश्वर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, तप, सन्तोष, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान, न्याय, शम, दम इत्यादि शुभ गुणों को धारण करना होता है तब सात्विक बुद्धि होती है। और जब रजोगुण के प्रभाव से कुछ विकार उत्पन्न होकर बुद्धि में चपलता, स्थिरता आने से सतोगुण के विपरीत आचरण

होने लगता है तब चिन्ता, विषाद, मान, क्रूरता, विषय तृषा, मिथ्याचार आदि होने लगता है। तामस बुद्धि का धर्म अज्ञान, हिंसा, नास्तिकता, तम, चोरी, दुराचार, मदिरा, मांसादि के सेवन की प्रवृत्ति आदि हैं।

मनुष्य को चाहिए कि राजस और तामस से बचकर सात्विक बुद्धि बनाने का यत्न करें।

प्रत्याहार—इन तीन अघमर्षण मन्त्रों से प्रत्याहार का अभ्यास करे। अघमर्षण का अर्थ है अघ (पाप)। पाप वृत्तियों का मर्षण (नाश)। प्रत्याहार का अर्थ है प्रति+आ+हार=प्रति+आहरण=निरोध। पाप का नाश अथवा चित्तवृत्तियों का निरोध एक ही बात है। विषय उत्पन्न हो जाय पर इन्द्रियां उसे ग्रहण न करें। इस प्रकार मन बाहर के विषयों से हटकर अन्तर्मुखी हो जाता है।

—

जगत को वश में रखने वाले
परमेश्वर के खेल निराले।
रात बनाई दिवस बनाया
सब को उत्तम सुख पहुँचाया॥
चन्द्र सूर्य भूमण्डल तारे
लोक लोकान्तर रच के सारे॥
नियम रखे इसमें भी ऐसे
थे पहले कल्पों में जैसे॥

MANTRA (5, 6, 7) AGHAMARSHANA

Om Ritanch Satyanch Abhidat Tapso Adhijayat. Tato Ratri Ajayat Tatah Samudro Arnvah.

Om Samudra Darnava Dadhi Samvatsaro Ajayat. Aho Ratrani Viddhad Vishwasya Mishto Vashi.

Om Surya Chandramasau Dhata Yatha Purvamakalpayat. Divanch Prithivinchantrikshamatho Swaha. *Rigveda 10-190|1-2-3.*

By Divine Wisdom and Might were revealed moral laws and Cosmic principles. By the same Divine Wisdom and Might appeared (Pralay) the Universal dissolution and the great Ocean full of water. After Creation of the ocean emerged Time with its divisions-days and nights, as ordained by the Lord of the Universe. As on previous occasions, the Sustainer of the world produced the Sun, the moon, the starry heaven, the earth and the intervening regions.

प्राणायाम करने से मस्तिष्क में गर्मी तथा खुश्की हो जाती है और अघमर्षण मन्त्रों पर विचार करने से व्याकुलता — इन दोनों को दूर करने के लिए आचमन करने का विधि-विधान है। इसलिए आचमन 'शन्नोदेवी' मन्त्र से तीन वार करें—पुनः गायत्री मन्त्र से लेकर अवतक जितने मन्त्र क्रिया करते हुए बोले थे उन सबका अर्थ विचारें और परमात्मा की सगुण, निर्गुण उपासना इस प्रकार करें।

१. हे सर्वप्रकाशक, सर्वव्यापक ईश्वर! आप कृपा करके हमें मनोवाञ्छित पूर्णानन्द को प्रदान करें। हे कल्याण की वर्षा करने वाले भगवान्! हम सब पर सुख की वर्षा कीजिये।

२. हे ओ३म्! विराट अग्नि और विश्वस्वरूप; हिरण्यगर्भ वायु और तेजस् स्वरूप, ईश्वर आदित्य और प्राज्ञस्वरूप — प्राणों से प्यारे — दुःखों को दूर करने हारे, सुखस्वरूप, जगत्पिता, वरने योग्य विज्ञान स्वरूप तथा गुणसम्पन्न भगवान्! हम सर्वथा आपका ही ध्यान करें। आप हमारी बुद्धियों को सत्कर्म में प्रेरित कर हमें अनुगृहीत करें।

३. हे ईश्वर! हम सब उत्तम कर्मों में आपकी सहायता चाहते हैं और पश्चाताप करते हैं कि मनुष्य शरीर पाकर भी हम से कुछ उपकार नहीं बनता। जैसे आपने सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि को बनाकर हम पर उपकार किया है वैसे हम लोग भी सब का उपकार करें और आपकी सहायता से सबको सुखी रख सकें।

४. हे सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार,

सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टिकर्ता भगवन् ! हे सनातन, मंगलमय, शुद्ध, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, के देने वाले सब के माता-पिता बन्धु और न्यायाधीश दीनानाथ ! हम सब इन तेरे शुभ गुणों से सम्पन्न हों।

५. हे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि प्रकृति विकारों से, अन्याय, अधर्म, राग, द्वेष, अज्ञान, मलिनता, ह्रस्वता, दीर्घता, भूख, प्यास, शीतता, उष्णता, आदि दोषों से छेदन, बन्धन, इन्द्रियों से दर्शन, ग्रहण और कम्पन आदि क्रियाओं से हर्ष, शोक, मोह, द्वेष आदि मनोविकारों से रहित भगवान। हम सब इन दोषों से रहित होकर सर्वदा आपकी ही उपासना करते हुए शुभ कार्यों में तत्पर रहें। कृपा कर हमें अनुगृहीत करें।

•

इस सगुण निर्गुण उपासना के पश्चात् संध्या के छः मनसा-परिक्रमा मन्त्र हैं जिनसे हमने चित्त को शुभ विचारों में स्थित करना है। जो विचार इन मन्त्रों के पाठ से उत्पन्न होते हैं उनसे चित्त में स्थिरता आजाती है ऐसा निश्चय जानें।

मनसा परिक्रमा का अर्थ है, मन के द्वारा परिक्रमा, मन से चारों ओर और भीतर बाहर परमात्मा को पूर्ण जानना और आप निर्भय, उत्साही और आनन्दित रहना।

मन्त्र (८) मनसा परिक्रमा

पहला मन्त्र इस प्रकार है:—

ओ३म् प्राची दिगग्निरधिपति रसितो । रक्षिता । दित्या इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ अथर्व. ३।२७।१

पदच्छेद—प्राची । दिक् । अग्निः । अधिपतिः असितः रक्षिता । आदित्याः । इषवः । तेभ्यः । नमः । अधिपतिभ्यः । नमः । रक्षितृभ्यः । नमः । इषुभ्यः । नमः । एभ्यः । अस्तु । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । दिष्मः । तम् । वः । जम्भेः । दध्मः ।

पदार्थः—प्राची—अपने सामने की, दिक—दिशा में जो, अग्निः—ज्ञानस्वरूप परमात्मा है उसको, अधिपतिः—अपना रक्षक जानें वह परमेश्वर, असिता—जो मरण जीवन के बन्धन में कभी नहीं आता अपने इस गुण से और इषवः—बाण के तुल्य, आदित्याः—प्राण और सूर्य की किरण से, रक्षिता—हमारी रक्षा करता है,

तेभ्यो—उन सब गुणों के स्वामी, अधिपतिभ्य:—ईश्वर के गुणों के लिए, नमोनम:—बारम्बार नमस्कार हो, रक्षितृभ्य:—ईश्वर के गुण तथा रचे पदार्थ जो जगत की रक्षा करते हैं उनको, नम:—नमस्कार हो, एभ्य:—इन, इषुभ्य: -पापियों को पीड़ा देने और धर्मात्माओं की रक्षा के साधन जो प्रभु के रचे बाण तुल्य हैं, नमः अस्तु—उनके लिए नमस्कार हो, इसलिए कि य:—जो कोई प्राणि, अस्मान्—हमसे, द्वेष्टि—द्वेष करता है, यम—जिस किसी से, वयम—हम, द्विष्म:—द्वेष करते हैं, तं—उन दोनों प्रकार के द्वेष को, व:—उन बाणों के (साधनों के), जम्भे:—वश में (दाढ़ में), दधम:—धरते हैं अर्थात प्रभु विनाश शक्ति के सम्मुख रखते हैं कि जिससे हम लोग किसी से वैर न करें और कोई भी प्राणी हमसे वैर न करें—हम परस्पर मित्रभाव से रहें।

अनुष्ठान—मनसा परिक्रमा मन्त्रों में हमने प्रभु की महिमा को सब दिशाओं में देखना है, जिससे चित्त के अन्दर स्थित प्रतिकूल संस्कार कुछ देर के लिए दब जाएँ और प्रभु के गुणों को देखते हुए तदानुकूल संस्कार जग जाएँ। मन से चारों ओर और भीतर, ऊपर,

परमात्मा को पूर्ण जानकर निर्भय, निःशंक, उत्साही, आनन्दित और पुरुषार्थी रहें --याद रखें वैर से वैर कभी नहीं जाता। मित्रता से वैर चला जाता है।

भावना—ईश्वर पूर्ण ज्ञानी है उसका प्रत्येक कार्य पूर्ण है कोई भी त्रुटि उसमें नहीं—सब सृष्टि उसी के द्वारा कार्यरूप में आई है। उस पूर्ण ईश्वर की शक्ति ही इस सृष्टि द्वारा दिखाई देती है।

(१) वह ६ रूपों में हमारा स्वामी है। १—अग्निः, २—इन्द्रः, ३—वरुणः, ४—सोमः, ५—विष्णुः और ६—वृहस्पतिः अर्थात वह परमात्मा समस्त ब्रह्माण्ड का ज्ञान रखता है, उसका प्रताप सर्वत्र छाया हुआ है वह सारे ब्रह्माण्ड में सर्वोत्तम है। वह सोम शांति आदि गुणों से युक्त है उसको किसी के द्वारा किसी बात के जानने की आवश्यकता नहीं वह व्यापक है और वह सबका पति परमेश्वर है।

(२) वह छः प्रकार से रक्षिता हैं—१—असितः, २—तिरश्चिराजिः, ३—पृदाकुः, ४—स्वजः, ५—कल्माषग्रीवः, ६—श्वित्रः। इनमें से तीन ईश्वर के गुण हैं और तीन ईश्वर के रचे पदार्थ। इनके अर्थ यह हैं—

असिता—बन्धन रहित, स्वजः—अजन्मा अर्थात् जन्म-मरण के बन्धनों से रक्षा करने वाला, श्वित्रः—जन्म-मरण के बन्धन से छुड़ाने का ज्ञान रखता है। यह तीन प्रभु के गुण हैं और तिरश्चि राजी—कीट-पतंगों की पंक्ति, पृदाकू—बड़े अजगर साँप आदि विषधारी प्राणी और कल्माष ग्रीवः—हरत रंग वाले वृक्षादि जिसके ग्रीवा के समान हैं। यह तीन ईश्वर के रचे पदार्थ हैं इन साधनों द्वारा प्रभु हमारी रक्षा करते हैं।

(३) मनसा परिक्रमा के छः मन्त्रों में जो इषु वर्णन किए गए हैं, वह सब श्रेष्ठों की रक्षा भी करते हैं और उन्हीं के द्वारा परमात्मा पापियों को दण्ड भी देते हैं। वह छः इषु यह हैं आदित्य, पितरः, अन्नम्, अश्निः, वीरुध, वर्षम्। आदित्य (सूर्य) अपनी रश्मियों द्वारा वायु के साथ मिल-कर प्राणों में प्रविष्ट होकर उनकी शक्ति को उत्तेजित करता है। अन्न से जगत का कारण वीर्य्य बनता है। और वीर्य से प्रजा उत्पन्न होती है। यही परमात्मा का बड़ा आश्चर्य कर्म है, ऐसा जानना चाहिए।

MANTRA (8) MANSA PARIKRAMA

Om Prachi Dig Agni Radhipati Rasito Rakshita Aditya Ishwa Te Bhyo Namo Adhipati Bhyo Namo Rakshitri Bhyo Nam Ishu Bhyo Nam Ebhyo Astu. Yo Asman Dweshti Yam Vayam Dwishmastam Wo Jambhe Dadhma.

Atharva Ved 3-27-1

The All-Knowing God is the Lord of the direction in front. This is the direction of advancement. Himself unfettered He is our Ideal. He protects us all. The rays of the sun are His instruments of protection. Our homage to His protective powers and to the beneficent (protective) objects created by Him. To Lord's justice do we surrender the malice which a man bears to us or we bear to him. (He will adjudicate between us and create love in our hearts.)

मन्त्र (६) मनसा परिक्रमा

ओ३म् दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।

अथर्व० ३।२७।२

पदच्छेद—दक्षिणा। दिक्। इन्द्रः। अधिपतिः। तिरश्चिराजिः। रक्षिता। पितरः। इषवः। तेभ्यः। नमः। अधिपतिभ्यः। नमः। रक्षितृभ्यः। नमः। इषुभ्यः। नमः। एभ्यः। अस्तु। यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। वयम्। द्विष्मः। तम्। वः। जम्भे। दध्मः।

पदार्थः—दक्षिणा—अपने दाएं, दिक्—दिशा में जो, इन्द्र—ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर है उसको, अधिपति—अपना रक्षक जानें वह परमात्मा, तिरश्चिराजी:—इन कीट पतंगादि प्राणियों की जो पंक्तियां हैं उनसे और, इषवः—बाण के समान, पितर—ज्ञानी लोगों से,

रक्षिता—हमारी रक्षा करता है, क्योंकि कीट, पतंगादि प्राणी पृथिवी से विष को ले लेते हैं। तेभ्यो:—उन सब गुणों के स्वामी, अधिपतिभ्य:—ईश्वर के गुणों के लिए, नमो नम:—बारम्बार नमस्कार हो,, रक्षितृभ्य:—ईश्वर के गुण तथा रचे पदार्थ जो जगत की रक्षा करते हैं उनको, नम:—नमस्कार हो, एभ्य:—इन, इषुभ्य:— पापियों को पीड़ा देने और धर्मात्माओं की रक्षा के साधन जो प्रभु के रचे बाण तुल्य हैं, नमः अस्तु — नमस्कार हो, इसलिए कि य:—जो कोई प्राणि, अस्मान्—हमसे, द्वेष्टि—द्वेष करता है, यम—जिस किसी से, वयम—हम, द्विष्म:—द्वेष करते हैं, तम्—उन दोनों प्रकार के द्वेष भाव को, वो—उन बाणों के, जम्भे:— वश में, दधम:—धरते हैं कि जिससे हम लोग किसी से वैर न करें, और कोई भी प्राणी हमसे वैर न करे और हम आपस में मित्र भाव से रहें।

नमस्कार का अर्थ है आदर, सदुपयोग आदि करना।

MANTRA (9) MANASA PARIKRAMA

Om Dakshina Dig Indro Adhipati Tirshch-raji Rakshita Pitar Ishwa. Te Bhyo Namo Adhi-pati Bhyo Namo Rakshitri Bhyo Nam Ishu Bhyo Nam Ebhyo Astu. Yo Asman Dweshti-yam Vayam Dwishmastam Wo Jambhe Dadhma.

Atharv Ved 3-27-2.

The God of Might is the Lord of the Side on our right hand. He protects us through rep-tiles. He uses wise men as instruments of pro-tection. Our homage to His protective powers and to the beneficent (protective) objects cre-ated by Him. To God's Justice do we surrender the malace which a man bears to us or we bear to him. (He will adjudicate between us and create love in our hearts).

मन्त्र (१०) मनसा परिक्रमा

ओ३म् प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षिता न्नमिषवः । तेभ्यो नमोधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।

अथर्व ३-२७-३

पदच्छेद—प्रतीची । दिक् । वरुणः । अधिपतिः । पृदाकुः । रक्षिता । अन्नम् । इषवः । तेभ्यः । नमः । अधिपतिभ्यः । नमः । रक्षितृभ्यः । नमः । इषुभ्यः । नमः । एभ्यः । अस्तु । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः । तम् । वः । जम्भे । दध्मः ।

पदार्थः— प्रतीची—अपने पीछे की, दिक्—दिशा में जो वरुणो—सर्वोत्तम परमेश्वर है उसको, अधिपति—अपना रक्षक जाने वह परमेश्वर, पृदाकु—जिसके अजगर सांप आदि विषधारी प्राणी समूह हैं उनसे और, इषव—बाण के समान, अन्नम—पृथ्वी आदि पदार्थों

से, रक्षिता—रक्षा करता है, (क्योंकि अजगर सर्प आदि पृथिवी से विष को ले लेते हैं) तेभ्यो—उन सब गुणों के स्वामी, अधिपतिभ्यः—ईश्वर के गुणों के लिए, नमोनमः—वारंवार नमस्कार हो, रक्षितृभ्यः—ईश्वर के गुण तथा रचे पदार्थ जो जगत की रक्षा करते हैं उन को, नमः—नमस्कार हो, एभ्यः—इन, इषुभ्यः—पापियों को पीड़ा देने और धर्मात्माओं की रक्षा करने के साधन जो प्रभु के रचे बाण तुल्य हैं, नमःअस्तु — नमस्कार हो इस लिए कि, यः—जो कोई प्राणी, अस्मान्—हम से, द्वेष्टि—द्वेष करता है, यम—जिस किसी से, वयम—हम, द्विष्मः—द्वेष करते है, तम्—उन दोनों प्रकार के द्वेषों को, वः—उन बाणों के (साधनों के) जम्भे—वशमें, दध्मः—धरते हैं कि जिससे हम लोग किसी से वैर न करें और कोई प्राणी हमसे वैर न करे, हम परस्पर मित्र भाव से रहें।

नमस्कार का अर्थ है आदर, सदुपयोग आदि करना।

MANTRA (10) MANASA PARIKRAMA

Om Pritichi Dig Varuno Adhipati Pridaku Rakshita Annam Ishwa. Tebhyo Namo Dhipati Bhyo Namo Rakshitri Bhyo Nam Ishu Bhyo Nam Ebhyo Astu. Yo Asman Dweshtiyam Vayam Dwishmastam Wo Jambhe Dadhma.

Atharv Ved 3-7-3.

The incomparable God is the Lord of the Side on our back. He protects us through Venomous creatures (who take poison from earth and air and leave pure atmosphere for us). The material objects (earth which produces food articles for us) are His instruments of Protection. Our homage to His protective Powers and to the beneficent objects created by Him. To God's Justice do we surrender the malace which a man bears to us or we bear to him. He will adjudicate between us and create love in our hearts.

मंत्र (११) मनसा परिक्रमा

ओ३म् उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनि रिषवः। तेभ्योनमोऽधिपतिभ्योनमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो ग्रस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि य वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः। (अथर्व ३।२७।४)

पदच्छेद—उदीची। दिक्। सोमः। अधिपति। स्वजः। रक्षिता। अशनिः। इषवः। तेभ्यः। नमः। अधिपतिभ्यः। नमः। रक्षितृभ्यः। नमः इषुभ्यः। नमः। एभ्यः। अस्तु। यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। वयम्। द्विष्मः। तम्। वः। जम्भे। दध्मः।

पदार्थः—**उदीची**—अपने बांये की, **दिक्**—दिशा में जो, **सोम**—शांत स्वरूप प्रभु हैं उसको, **अधिपतिः**—अपना रक्षक जाने वह, **स्वजः**—प्रभु जो कभी जन्म नहीं लेता स्वयं प्रकाश स्वरूप है अपने प्रकाश से और, **इषवः**—बाण के समान, **शनिः**—विद्युत बिजुली से,

रक्षिता:— हमारी रक्षा करता है, क्योंकि विजुली के द्वारा हमारे शरीर में शुद्ध रक्त संचालन कर हमें जीवित रखता है। तेभ्यो: — उन सब गुणों के स्वामी, अधिपतिभ्य:—ईश्वर के गुणों के लिए, नमोनम: —बार बार नमस्कार हो, रक्षितृभ्य:—ईश्वर के गुण तथा रचे पदार्थ जो रक्षा करते हैं, नम:—उनको नमस्कार हो, एभ्य:—इन, इषुभ्य:—पापियों को पीड़ा देने और धर्मात्माओं की रक्षा करने के साधन जो प्रभु के रचे वाण तुल्य हैं उनके लिए, नमः अस्तु—नमस्कार हो इस लिए कि, य:—जो कोई प्राणि, अस्मान्—हम से, द्वेष्टि—द्वेष करता है, यम:—जिस किसी से, वयम:—हम, द्विष्म:—द्वेष करते हैं, तम:—उन दोनों प्रकारके द्वेष को, व:—उन वाणों के (साधनों के) जम्भे:—वश में, दध्म:— करते हैं इसलिए कि हम किसी से वैर न करें, और कोई भी प्राणी हम से वैर न करे अर्थात हम परस्पर मित्रभाव से रहें।

नमस्कार का अर्थ है आदर, सदुपयोग आदि करना।

MANTRA (11) MANASA PARIKRAMA

Om Udichi Dik Somo Dhipati Sawjo Rakshita Shanirishwa. Tebhyo Namo Adhipati Bhyo Namo Rakshatri Bhyo Nam Ishu Bhyo Nam Ebhyo Astu, Yo Asman Dweshtiyam Vayam Dwishmastam Wo Jambhe Dadhma.

Atharv Ved 3-27-4.

God, the abode of tranquility, is the Lord of the Side on our left. He is our refuge, Being birthless He is our everlasting support. Cosmic energy is His instrument of Protection. Our Homage to His Protective powers and to the beneficent objects created by Him. To God's justice do we surrender the malice which a man bears to us or we bear to him. He will adjudicate between us and create love in our hearts.

मंत्र (१२) मनसा परिक्रमा

(५) ओ३म् ध्रुवादिग् विष्णुरधिपतिः कल्माष ग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।

अथर्व ३।२७।५

पदच्छेद—ध्रुवा। दिक्। विष्णु। अधिपति। कल्माष-ग्रीवः। रक्षिता। वीरुधः। इषवः। तेभ्यः। नमः। अधिपतिभ्यः। नमः। रक्षितृभ्यः। नमः। इषुभ्यः। नमः। एभ्यः। अस्तु। यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। वयम्। द्विष्मः। तम्। वः। जम्भे। दध्मः।

पदार्थः—ध्रुवाः दिक्—अपने नीचे की दिशा में जो, विष्णुः—सर्वव्यापक परमेश्वर है उसको, अधिपतिः—अपना रक्षक जाने वह परमेश्वर जिसके, कल्माषग्रीवः—हरत रंग वाले वृक्षादि गर्दनके समान हैं उन वृक्षों से और,

इषवः—वाण के तुल्य, वीरधः—लताओं आदि से, रक्षिताः—हमारी रक्षा करता है, क्योंकि वे वायु से (कार्बन) गंदगी वाली वायु को आप ले लेते हैं और शुद्ध वायु को हमारे लिए दे देते हैं, तेभ्यः—उन सब गुणों के स्वामी, अधिपतिभ्यः—ईश्वर के गुणों के लिए, नमो नमः—वार वार नमस्कार हो, रक्षितृभ्यः ईश्वर के गुण तथा रचे पदार्थ जो रक्षा करते हैं, नमः—उनको नमस्कार हो, एभ्यः—इन, इषुभ्यः—पापियों को पीड़ा देने और धर्मात्माओं की रक्षा के साधन जो प्रभु के रचे वाण तुल्य हैं उनके लिए, नमः अस्तु नमस्कार हो इसलिए कि, यः—जो कोई प्राणी, अस्मान—हम से, द्वेष्टि—द्वेष करता है, यम—जिस किसी से, वयम—हम, द्विष्म—द्वेष करते हैं, तम—उन दोनों प्रकार के द्वेष को, वः—उन साधनों के (वाणों के) जम्भे— वश में, दध्मः— धरते हैं कि जिससे हम लोग किसी से वैर न करें और कोई हमसे वैर न करें (हम परस्पर मित्र भाव से रहें)।

नमस्कार का अर्थ है आदर, सदुपयोग आदि करना।

MANTRA (12) MANASA PARIKRAMA

Om Dhruva Dig Vishnu Radhipati Kalmashgrivo Rakshita Virudhishwa. Tebhyo Namo Adhipati Bhyo Namo Rakshitri Bhyo Nam Ishu Bhyo Nam Ebhyo Astu. Yo Asman Dwashtiyam Vayam Dwishmastam Wo Jambhe Dadhma.

Atharv Ved 3-27-5.

The All Pervading God is the Lord of the Regions below :— The Variegated Vegetable World rises from the earth as the neck above the trunk. Creepers are His instruments of protection. They take Carbon Dioxide which we exhale and give oxygen to us for inhale. Our homage to His protective powers and to the beneficent (protective) objects created by Him. To God's justice do we surrender the malice which a man bears to us or we bear to him. (He will adjudicate between us and create love in our hearts).

मन्त्र (१३) मनसा परिक्रमा

ओ३म् ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो-रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।

अथर्व ३।२७।६

पदच्छेदः—ऊर्ध्वा। दिक्। बृहस्पति। अधिपतिः। श्वित्रः। रक्षिता। वर्षम्। इषवः। तेभ्यः। नमः। अधिपतिभ्यः। नमः। रक्षितृभ्यः। नमः। इषुभ्यः। नमः। एभ्यः। अस्तु। यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। वयम्। द्विष्म। तम्। वः। जम्भे। दध्मः।

पदार्थः—**ऊर्ध्वा**—अपने ऊपर की, **दिक्**—दिशा में, **बृहस्पतिः** जो वाणी का स्वामी परमेश्वर है, **अधिपति**—उसको अपना रक्षक जाने, **श्वित्रः**—वह ज्ञानमय परमेश्वर अपनी पवित्रता से, और **वर्षम**—वर्षा की बिन्दुओं से, **इषवः**—

वाण के समान हैं, **रक्षिता**—हमारी रक्षा करता है, **तेभ्यः**—उन सब गुणों के स्वामी, **अधिपतिभ्यः**— ईश्वर के गुणों को, **नमो नमः**—वारम्वार नमस्कार हो, **रक्षितभ्यः**—ईश्वरके गुणों तथा रचे पदार्थ जो रक्षा करते हैं, **नमः**—उनको नमस्कार हो **एभ्यः**—इन, **इषुभ्यः**—पापियों को पीड़ा देने और धर्मात्माओं की रक्षा के साधन जो प्रभु के रचे वाण तुल्य हैं उनके लिये, **नमः अस्तु**—नमस्कार हो। इस लिए, **यः**—कि जो कोई प्राणी, **अस्मान**—हम से, **द्वेष्टि**—द्वेष करता है, **यम**—जिस किसी से, **वयम** हम सव, **दिष्मः**—द्वेष करते हैं, **तम्**—उन दोनों प्रकार के द्वेषों को, **वः**—उन वाणोंके (साधनोंके) जम्भे वश में, **दध्मः**—धरते हैं कि जिससे हम लोग वैर न करें और कोई भी प्राणी हम से वैर न करे, किन्तु हम सव लोग परस्पर मित्र भाव से रहें।

नमस्कार का अर्थ है आदर, सदुपयोग आदि करना।

MANTRA (13) MANASA PARIKRAMA

Om Urdhva Dig Brihspati Shvitro Rakshita Varsham Ishwa Tebhyo Namo Adhipatibhyo Namo Rakshitribhyo Nam Ishubhyo Nam Ebhyo Astu Yo Asman Dweshtiyam Vayam Dwishmastam Wo Jambhe Dadhma.

Atharv Ved 3-27-6.

God, the controller of all, is the Lord of the regions above. He protects us from impurities and He uses rains as His instruments of protection. Our homage to His protective powers and the beneficent (protective) objects created by Him. To God's justice do we surrender the man who bears malice against us or against whom we bear ill will. He will adjudicate between us and create love.

चित्त का स्वरूप

जिस चित्त को स्थिर बनाने के लिए मनसापरिक्रमा मन्त्र हैं उसका स्वरूप निम्नलिखित है :—

सत्, रज और तम से बनी हुई एक विशेष वस्तु है जिसे चित्त कहते हैं, इसमें सब अर्थों को स्मरण अर्थात् पूर्वापर कर्मों का यथावत् विचार होता है। यह चित्त सृष्टि के आरम्भ में हर एक जीवात्मा को मिल जाता है और नष्ट तब होता है जब मुक्ति मिल जाय या महा-प्रलय हो जाय। इस चित्त पर जो भी हम कर्म करते हैं उसके संस्कार पड़ते हैं और जमा रहते हैं। प्रलय के समय में यह संस्कार परमात्मा के ज्ञानमें संग्रहीत रहते हैं। फिर सृष्टि के आरम्भ में इस चित्त के निर्माण पर प्रत्येक जीव को उसके संस्कार दे दिये जाते हैं।

यह चित्त सब दिशाओं में चलता है ऐसा ही इसका स्वभाव है। जिस प्रकार फोटोग्राफर एक प्लेट पर फोटो लेता है इसी प्रकार मनुष्य अपने-अपने कर्मों के संस्कार अपने चित्त पर डालता रहता है। इस लिए हमें चाहिए कि कोई भी कर्म ऐसा न करें जिसके संस्कार हमें बाद में तंग करें। यह चित्त जीवात्मा के साथ जन्म-जन्मान्तरों में जाता है और जैसे-जैसे संस्कार होते हैं वैसे-वैसे भोग भोगता है।

जीवात्मा का बन्ध और मोक्ष चित्त के साथ है। आत्मदर्शन और ब्रह्मदर्शन करा देने की शक्ति भी इस चित्त में ही है। जब बाह्य कर्म का अभाव होता है तब भी यह चित्त अपने व्यापार में रत रहता है।

इसी कारण स्वप्न आते हैं यह चित्त जीवात्मा की चेतना—ज्ञान शक्ति का द्योतक और अन्तःकरण का ज्ञान प्रदान अंग व भाग विशेष है—हृदयगत इसी चित्तग्रह में आत्मा का निवास है।

मनसापरिक्रमा मन्त्रों का अनुष्ठान

मनसा परिक्रमा के पहले मन्त्र में प्रभु को असिता कहा गया है, व धन रहित होने से वह बन्धनों को काटता है। इस मन्त्र से हमने अपने मोह बन्धन को काटना है। मोह की अवस्था है तम की। तम ही से सब पाप होते हैं—

१. यह मोह आदित्य पुरुषों की सहायता और सत्संग से, उनके ही कृपा कटाक्ष, उपदेशों और शिक्षा से परिवार की सीमा से निकलकर जाति, देश, संसार और विश्व कुटुम्ब में फैलकर प्रेम बन जाता है। पुरुषार्थ हमारा धर्म है।

२. दूसरा बन्धन है लोभ का। इसे दूसरे मन्त्र में वर्णित पितरों की शरण से परमार्थ में बदलना और सबको अपना ही आत्मा समझना है। लोभ जड़ पदार्थों का होता है—इसे इन्द्र जो सब ऐश्वर्य को देता है स्वयं मिटा देता है।

३. तीसरा बन्धन है काम का। काम इन्द्रिय की उत्तेजना से होता है। वरुण प्रभु जो जल के देवता हैं और तीसरे मन्त्र के अधिपति हैं इस काम को हटा देते हैं।

४. चौथा बन्धन क्रोध का है—विद्युत क्रोध को शांत करके सोम रूप बना देती है।

५. पांचवीं ग्रन्थी है अहंकार—इसे हम नम्रता से वश में कर सकते हैं।

६. छठे मन्त्र में वृहस्पति स्वामी है—जब सब बन्धन कट जाते हैं और सर्वथा सफेद सत् ज्ञान ही रक्षक होता है तब प्रभु की पूर्ण दया हो जाती है।

श्री महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज अपनी पुस्तक संध्यासोपान में लिखते हैं कि मनसा परिक्रमा के मन्त्रों में द्वेष के मिटाने के लिए प्रार्थना की गई है। यह द्वेष मोह, लोभ, काम, क्रोध और अहंकार से पैदा होता है। जब मोह से पैदा होता है तो ज्ञान नहीं रहता। जब लोभ से पैदा होता है तो ईमान नहीं रहता, मनुष्य धर्मपथ से गिर जाता है। जब काम से द्वेष पैदा होता है तो श्रेष्ठता नष्ट होकर नीचता आ जाती है। जब क्रोध से द्वेष पैदा होता है तो मनुष्य की सौम्यता मारी जाती है। और जब क्रोध से पैदा होता है तब धीरता, गम्भीरता और दृढ़ता उड़ जाती है। इस महान शत्रु द्वेष को दूर करना मनुष्य मात्र के लिए आवश्यक है।

भावना:—हम परमात्मा की महिमा को अपने चारों ओर तथा ऊपर नीचे अनुभव करते हुये और उसकी बनाई हुई चीजों को उपकरण बनाते हुए उन लोगों के साथ भी प्रेम का व्यवहार करें, जो शायद हमारे साथ प्रेम न करते हों। क्योंकि हृदय का हृदय की ओर आकर्षण होता है इस लिये यदि हम दूसरों से द्वेष न करेंगे, तो दूसरे भी हम से द्वेष करना छोड़ देंगे।

उपस्थान

मन बुद्धि और चित्त को इस प्रकार शान्त और स्थिर कर के उपस्थान के चार मन्त्रों से अन्तःकरण के चौथे तत्त्व अहंकार की गति को रोकना है ताकि जीवात्मा अपने स्वरूप को जानकर परमात्मा का साक्षात कर सके। विचार यह रहे कि हम परमेश्वर के निकट और परमात्मा हमारे अति निकट है, ऐसी बुद्धि करके प्रेम में अत्यन्त मग्न हो जायें और अपनी आत्मा और मन को परमात्मा में जोड़ दें।

उपस्थान और उपासना दोनों का अर्थ एक ही है:—उप=समीप, स्थान=बैठना, आसन=बैठना। समीप बैठना अर्थात् परमात्मा के समीप बैठना। पर उपस्थान और उपासना में भेद है। उपस्थान में अहंकार की गति को रोकना होता है और उपासना में केवल प्रभु के समीप बैठना होता है। उपस्थान में चित्त वृत्ति को सब ओर से हटाकर परमात्म—परायण बनाना है। जब अहंकार की गति रुक जाती है तब प्रभु का साक्षात्कार होता है। योग में इसी अवस्था को ध्यान कहते हैं ध्यान केवल सन्ध्या के शब्दों और अर्थों में करना हैं। इस प्रकार करने से प्रभु मुक्ति के सुख को प्रीति पूर्वक प्राप्त कराते हैं। यही जीवन मुक्त होना है।

उपस्थान के मन्त्रों का उद्देश्य यह है कि मनुष्य में प्रभु की दिव्य ज्योति आवे और उसका कल्याण करदे। परमात्मा की उपासना एक मात्र उसके स्वरूपभूत ज्ञान से हो सकती है अन्य जड़ देवतादि साधनों से नहीं। जो गुण-गुणि भावसे उसके ज्ञाता हैं परन्तु उन्होंने अनुष्ठान

रूपसे ब्रह्म ज्ञान को अपने आप में अनुभुत नहीं किया, केवल शब्दार्थ मात्र से ब्रह्म के ज्ञाता हैं, वह उसको नहीं जानते। इसलिए हमें ब्रह्म के भावों को अपने आप में धारण करना है।

मन्त्र १४ उपस्थान

ओं३म् उद्वयंतमसस्परिस्वः पश्यन्त उत्तरम् देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१॥

यजुः ३५/१४,

पदच्छेदः—उत् । वयम् । तमसः । परि । स्वः । पश्यन्तः । उत्तरम् । देवम् । देवत्रा । सूर्यम् । अगन्म । ज्योतिः । उत्तमम् ।

पदार्थ— वयम—हम, तमसः— अविद्यान्धकार से, परिः—पृथक, स्वः—आनन्दस्वरूप और प्रकाशस्वरूप, उत्तरम—प्रलय के अनन्तर भी नित्यस्वरूप से वर्त्तमान, देवत्र।—प्रकाश करने वालों में भी, देवम्—प्रकाश करने वाले तथा

धर्मात्माओं और मुक्ति की इच्छा करने वालों तथा योगयुक्तों को पूर्ण आनन्द देने वाले और प्रसन्न करने वाले, **सूर्यम**–चराचरके संचालक, **उत्तमम**--सर्वोत्कृष्ट, **ज्योति**–ज्ञानस्वरूप और अपने प्रकाश से प्रकाशित आपको, **पश्यन्तः**–ज्ञान दृष्टि से साक्षात करें और **उत्**—उत्कृष्ट श्रद्धा से युक्त सत्य से, **अगन्म**—प्राप्त होवें।

अनुष्ठान– इस मन्त्र में हम प्रभु के देखने की इच्छा करते हैं, देखना ही नहीं चाहते उसे प्राप्त भी करना चाहते हैं। इसके लिए हमने दो साधन अपनाएं हैं एक श्रद्धा (सत् धारणा सामर्थ्य) दूसरा सत्य, इन दो साधनों से हम प्रभु का साक्षात् करना चाहते हैं। अनुमान यां विश्वास सें तो प्रभु शास्त्रों के पढने से और युक्तियों से जाना जाता है किंतु यहां तो प्रभु को स्पष्ट देखने की याचना है अर्थात् हम प्रभु के निजी कल्याण मय तेजस्वी रूप को देखना और प्राप्त करना चाहते हैं।

भावना– हमने सत्य को धारण कर लिया। इस साधन से प्रभु प्रकृति की तम अवस्था से हमारा उत्थान करें और हमें अन्तिम ज्योति का दर्शन करायें—

यह प्रकृति स्वयं प्रभुपूजा का पवित्रमन्दिर है। प्रभु! हम आपकी शरण हैं, हमारी रक्षा करनी अब आपके हाथ है।

MANTRA (14) UPSTHAN

Om Udvayam Tamsaspari Swa, Pashyant Uttaram Devam Devtra Suryamagnam Jyotiruttmam. *Yaju 35-14.*

May we realise and secure Communion with the Supreme Self, divoid of all darkness, full of all bliss, survivor after Universal dissolution, the illuminer of all that is luminous, the Soul of the Universe and the best effulgence. We adopt the principle of truth (Satya) to attain this objective.

मंत्र १५ उपस्थान

ओ३म् । उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥२॥ यजु ३३।३१,

पद्च्छेद—उत् । उ । त्यम् । जातवेदसम् । देवम् वहन्ति । केतवः । दृशे:विश्वाय । सूर्यम् ।

पदार्थः— जातवेदसम्—उत्पन्न हुए हैं चारों वेद जिससे और जो प्रकृत्यादि सब भूतों में व्याप्त हो रहा है तथा जो सब ज त को जानता है, त्यम्—उस, देवम्—देवों के देव परमात्मा को, केतवः—वेदकी श्रुतियां और विविध जगत के पृथक २ रचनादि नियामक गुण, उ—तर्क वितंक के साथ, उद+वदन्ति—जतला रहे हैं और विश्वाय—सब के प्रति, सूर्यं—चराचर जगत के संचालक परमात्मा का, दृशे—दर्शन कराती हैं, अर्थात ब्रह्म की ज्ञान द्वारा समीपता लाभ करने के लिए यह कोटानकोटि ब्रह्माण्डों का पुञ्ज परमात्मरूप मूल का विवर्ण रूप है ॥

अनुष्ठान:—इस उपस्थान के दूसरे मन्त्र में प्रभु ने दर्शन के साधन बतलाये हैं। कहा है कि प्रभु जातवेदा: है, बिना वेद के जाने कोई परमात्मा के गुणों के जानने का उपाय नहीं है। अर्थात वेदमें इसको जानने का साधन वर्णित है, इसको पढ़ें। प्रभु उत्पन्न हुए सब भूतों को प्राप्त हो रहा है। वह इन सबमें व्याप्त हो रहा है। जितने संसार के पदार्थ हैं उनकी रचना को देखकर प्रभु का ज्ञान होता हैं और ज्ञान के बिना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती। विज्ञान ही उसका अवधि है और सृष्टि की रचना उसको रचने वाले ईश्वर का निश्चय करती है।

भावना-- हम प्रभु के आदेश को मानते हैं (१) वेद को पढ़ें और (२) सृष्टि रचना से उसके गुणों को और फिर उन गुणों से प्रभु का साक्षात करें। जैसे एक फूल अपने रंग, आकार और सुगन्ध से जाना जाता है, वैसे प्रभु भी उसके गुण, कर्म और स्वभाव से साक्षात किया जाता है।। इन गुण कर्म स्वभाव को हम वेद के स्वाध्याय और सृष्टि रचना से जानें।। इन गुणों का प्रभाव क्रमश: हमारे भीतर आने लगता है ।।

MANTRA (15) UPSTHAN

Om Udatyam Jatvedasam Devam Vahanti Ketvah. Drishe Vishvay Suryam.

Rig Ved 1-50-10.

My Lord is the revealer of the Vedic Knowledge, the fount of all light, the maker of all things. Cosmic phenomena and the Vedas do, as sign-posts, point out to Him. On this Lord, we meditate for knowledge of the Universe.

मंत्र (१६) उपस्थान

ओ३म् चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षु-र्मित्रस्य वरुण स्याग्नेः। आप्राद्यावा पृथिवी अन्तरिक्षँ सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥३॥ (यजु ७।४२,

पदच्छेदः-- चित्रम् । देवानाम् । उत् । अगात् । अनीकम् । चक्षुः । मित्रस्य । वरुणस्य अग्ने । आप्रा । द्यावा । पृथिवी । अन्तरिक्षम् । सूर्य आत्मा । जगतः । तस्थुषः । च । स्वाहा ।

पदार्थः-- उत्+अगात्—वह आ गया, चित्रम वह तो आश्चर्य रुप है, देवानाम्—वह देवों का, अनीकम्—परमबल है वह नेत्र से देखा नहीं जा सकता मित्रस्य—राग द्वेष रहित मनुष्य का, वरुणस्य—सब उत्तम कामों के करने वाले मनुष्य का, अग्ने—ज्ञान से प्रकाशमान का, चक्षुः-सत् और असत् का बोध कराने वाला है, द्यावापृथिवी—द्यु लोक, पृथिवी लोक, अन्तरिक्ष लोक को, आप्रा—पूर्ण कर रहा है। जगत—

चेतन संसार का, **च**—और, **तस्थुषः**—जड़ जगत् का, **आत्मा**—आत्मा के समान वर्त्तमान, **सूर्यं**—सूर्य के समान प्रकाशमान है। **स्वाहा**—प्रभु सत्यता से प्राप्त होता है॥

अनुष्ठानः--उपस्थान के पहले मन्त्र में हम दो वर्त धारण करते हैं एक श्रद्धा और दूसरा सत्य। दूसरे मन्त्र में प्रभु का आदेश है कि श्रद्धा युक्त सत्य के साथ दो उपाय और करो (१) वेद पढ़ो (२) सृष्टि रचना को देखो। जब हम यह चारों बातें स्वीकार कर लेते हैं, तो प्रभु साक्षात हो जाते हैं और हम उसे ज्ञान दृष्टि से देखते हैं।

उपस्थान के इस तीसरे मन्त्र में हम परमात्मा को अपने जीवात्मा में अनुभव करते हैं और कहते हैं कि जो ब्रह्म हमारे अन्दर है वह तो सारे ब्रह्माण्ड में दीख रहा है, सर्वत्र व्यापक है॥

भावना:-- प्रभु कृपा करें तो हम इस प्रकाशमय परमात्मा को देखते रहें, यह दर्शन हमें सत्य के ग्रहण करने से हुए हैं। हम सत्य को कभी न छोड़े॥

MANTRA (16) UPSTHAN

Om Chitram Devanam Udagad Anikam Chakshur Mitrasya Varunasy Agne. Apra Dyava Prithivi Antariksham Suryatma Jagatas Tasthushashcha Swaha.

Rig Ved 1-115-1.

Varily, My Lord, You are wonderful. We see you manifest yourself as such in many ways. You are the very breath of the entire Universe; repository of all living and material world, power behind the Sun, the light, air, fire, water and the entire Cosmos. May we see you for ever in this way.

मंत्र (१७) उपस्थान

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं। जीवेम शरदः शतँ शृणुयाम शरदः शतं। प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं। भूयश्च शरदः शतात् ॥ ४ ॥ यजुः ३६।२४॥

पदच्छेदः-- तत्। चक्षु। देवहितम्। पुरस्तात्। शुक्रम उत्। चरत्। पश्येम। शरदः। शतम्। जीवेम। शरदः। शतम्। शृणुयाम। शरदः। शतम्। प्रब्रवाम्। शरदः। शतम्। अदीना। स्याम्। शरदः। शतम्। भूयः। च। शरदः शतात्॥

पदार्थः-- चक्षुः—सब का द्रष्टा, देवहितम्—धार्मिक विद्वानों का परम हितकारक, पुरस्तात्—सृष्टिके पूर्व वर्तमान, शुक्रम—शुद्ध स्वरूप, उत+चरत—उत्कृष्टता से व्यापक, विज्ञा स्वरूप और प्रलय के अनन्तर भी रहने वाले, तत्—उस ब्रह्म को, शरदः शतम—सौ वर्ष, पश्येम—देखें। उस की कृपा से, शरदः शतम—

सौ वर्ष, जीवेम—प्राणों को धारण किये रहें। उसी ब्रह्म को, शरदः शतम—सौ वर्ष, शृणुयाम—सुनें। और उसी ब्रह्म के गुणों को, शरदः शतम—सौ वर्ष, प्रब्रवाम—दूसरों के लिये उपदेश करें। इस प्रकार उस की उपासना, उन पर विश्वास करने और उसकी कृपा से, शरदः शतम—सौ वर्ष, अदीना—स्वतन्त्र, स्याम—रहें। उसी की कृपा से, शरदः शतात—सौ वर्ष से, भूयः—अधिक, देखें, जीवें, सुनें, सुनावें, और स्वतन्त्र रहें॥

अनुष्ठानः—इस प्रकार प्रेम में अत्यन्त मग्न होके आत्मा और मन को परमेश्वर में जोड़ के स्तुति प्रार्थना सदा करते रहें॥

भावनाः— ऐसा करने से निश्चय जानो अहंकार की गति रुक जाती है और जब यह रुक गई तब आत्मा का साक्षात हो जाता है और प्रभु आत्सा के अन्तरनिहित दीख पड़ता है॥

ऐसा होने पर वह ईश्वर समस्त कठिनाइयों के स्थानों की पार कर देता है और जैसे सागर को पार करने के लिये नाव का आश्रय लेते हैं, इसी प्रकार ईश्वर की भक्ति सभी बुराइयों को पार कर देती है। इस लिये सदैव यह भावना हो कि हम कभी भी प्रभु भक्ति से वंचित न हैं।

MANTRA (17) UPASTHAN

Om Tachakshur Devhitam Purastat. Chhukram Ucharat, Pashem Sharda Shatam. Jeevem Sharada Shatam. Shrinuyam Sharda Shatam. Prabhravam Sharda Shatam, Adinasyam Sharda Shatam. Bhuyasch Sharda Shatat.

O Lord, May we feel your illuminating eye ever present before us, the eye ever gracious and elevating for the pure minded. May we live a hundred years–a life in full possession of powers of vision, hearing and speech, a life of freedom from restraint and dependence! May we live a life of this type even longer than a hundred years !

"अहंकार का स्वरूप"

उपस्थान मन्त्रों में जिस अहंकार की गति को रोकने के लिए साधन अपनाए गए हैं उस अहंकार का स्वरूप निम्नलिखित है:—

प्रभु की ईक्षण से प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है अर्थात प्रकृति अपने साम्य रूप का परित्याग करती है और कार्य के रूप में सर्वप्रथम परिणाम 'महत्' होता है। इस 'महत' के तीन गुणात्मक भेद हैं (१) जिस में सत्व का भाग मुख्य होता है—इसे समष्टिचित जानो। इसी का अंश हमारा चित्त है (२) जब इसमें राजस की अधिकता होती है, तब समष्टि बुद्धि उत्पन्न होती है जिस का अंग हमारी बुद्धि है (३) तम की मात्रा मिल कर समष्टि अहंकार प्रकट हो जाता है। उसी "समष्टि अहंकार" का एक अंश प्रत्येक देह में विद्यमान है। इसका निवास हृदय प्रदेश में स्थित आनन्दमय कोष व कारण शरीर में है।

यह अहंकार प्रत्येक ज्ञान, कर्म, पदार्थ, तथा भावना में आत्म भाव (ममत्व) का उत्पादक है। यह एक ऐसा तत्त्व है जो जीवात्मा को 'अहं अस्मि' का भान कराता है। यह भी चित्त की भाँति सत्, रज और तम से बना हुआ है किन्तु चित्त के समान यह संस्कारों का केन्द्र नहीं है यह शुद्ध और स्वच्छ है। इस पर आत्मा का प्रकाश पड़ता है, और आत्मा का अहं भाव इस अहंकार रूपी तत्त्व में प्रकाशित होता है, और इस अहंकार में ही प्रत्येक आत्मा का भान होता है। यह चित्त के संस्कारों को उल्ट पुल्ट करता हुआ स्मृति के द्वारा इनको उत्तेजित करके बुद्धि मण्डल को फेंकता रहता है। यह तत्त्व उस समय भी काम करता है जब मन और बुद्धि से अवकाश ग्रहण करके आत्मा बैठ जाता है।

इस तत्त्व की पहिचान इस प्रकार है कि जब हम रात्रि को यह कह कर सो जाते हैं कि कल चार बजे उठना है तो जो तत्त्व हमें ठीक चार बजे जगा देता है वह अहंकार रूपी तत्त्व है। सुषुप्ति अवस्था में तो यह बात स्वाभाविक होती रहती है किन्तु जागृत अवस्था में यदि कोई मन और बुद्धि से अवकाश ग्रहण करके अहंकार रूपी तत्त्व को कार्य करने और उससे रजोगुण तथा तमोगुण को हटाकर सतोगुण को बढ़ने दे, तो आत्मा को साक्षात्कार करे।

इस अहंकार तत्त्व में स्थित जीवात्मा उपस्थान के चारों मन्त्रों द्वारा परमात्मा के बहुत ही समीप हो जाता है और परमात्मा का साक्षात् करता है ऐसा विद्वानों ने कहा है। उपस्थान के द्वारा किये गए प्रभु दर्शनों के पश्चात मनुष्य की यह भावना होती हैं कि वह उस दिव्य ज्योति को देखता ही रहे। केवल इतना ही नहीं चाहता उसे प्राप्त भी करना चाहता हैं। इसके लिये वह डट कर बैठ जाता हैं।

आचमन् और जप

गायत्री का उचारण करने से पहिले जो आचमन करने का विधान है उसे "शन्नो देवी" के मन्त्र से पूर्ण करते हैं, और फिर गायत्री का जप आरम्भ करते है। पहिले उच्च स्वर से और फिर मनसे, जिससे मन्त्र उच्चारण के साथ २ अर्थ प्रतीत हो। मन्त्र इस प्रकार हैं:—

मंत्र (१८) गुरु मंत्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ यजुः ३६।३

पदच्छेद—भूः। भुवः। स्वः। तत। सवितुः। वरेण्यम्

भर्गो । देवस्य । धीमहि । धियो । यः । ना । प्रचोदयात ।।

पदार्थ-- भूः—जो सब जगत के जीवन का आधार, प्राणों से प्रिय और स्वयंभू है, भूवः—जो सब दुःखों से रहित और जिस के संग से जीव सब दुःखों से छूट जाता है, स्वः—जो नाना विध जगत में व्यापक हो के सब को धारण करता है, देव—जो सब सुखों का दाता और सर्व ऐश्वर्य का देने हारा है, तत् सवितः—जो सब जगत की उत्पत्ति करता है, उस परमात्मा का जो अति उत्तम अति श्रेष्ठ अति पवित्र, वरेण्यम—स्वीकार करने योग्य, भर्गो—ब्रह्म चेतन स्वरुप है हम लोग उस परमात्मा के इस स्वरूप को, धीमहि—धारण करें, इस प्रयोजन के लिये कि, यः— वह सविता देव प्रभु, नः—हमारी, धियो—बुद्धियों को, प्रचोदयात—उत्तम गुण कर्म और स्वभावों में प्रेरित करे अर्थात बुरे कर्मो से बचाकर शुद्ध कर्मों में लगावे ।

अनुष्ठान--प्रभु । हमने तो आप का स्वरूप हृदय में धारण कर लिया है, अब आप का काम है हमारी बुद्धियों को चलाना । चलाओ जहाँ चाहते हो, चलाओ जहाँ चाहते

हो..........................इस प्रकार के विचार का तांता बांध लिया जावे और उस का तार बीच में टूटने न पावे। हमारे कान जप की निरन्तर ध्वनि को सावधान सुनते जावें, और मन भी सावधान होकर इस व्यापार का निरीक्षण करता जाए।

भावना— अब हम ने अपने मन को जप की ध्वनि में लीन कर लिया है और हमें प्रभु कृपा से सिद्धि हो जायगी अर्थात प्रभु प्राप्ति अवश्य होगी।

जप का समय निश्चित रखना चाहिये। जब वह समय समाप्त हो जावे, तब समर्पण की बारी आती है।

समर्पण

इसके अनन्तर हाथ जोड़कर मस्तिक को झुका कर जप, उपासना आदि अपने सब कामों को निम्नलिखित मन्त्र बोलकर परमात्मा के समर्पण करें:—

हे ईश्वर दयानिधे! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादि कर्मणा धर्मार्थ काम मोक्षाणाँ सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः।

पदच्छेद:— हे। ईश्वर। दयानिधे। भवत्। कृपया। अनेन। जप। उपासना। आदि। कर्मणा। धर्म। अर्थ। काम। मोक्षाणाम। सद्यः। सिद्धिः। भवेत। नः।

अर्थ:— हे परम देव कृपालु दयालु पिता। आप की हम पर अपार कृपा और दया है, जो आप हमें प्रतिदिन प्रेरित करते हैं कि हम आप के गुणों का गान करके अपने जीवन को सफल बना सकें। प्रभु ! जो भी शुभ कार्य-- सध्या, उपासना, अग्निहोत्र, जप, वेद पाठ आदि-- हम कर पाते हैं वह सब आप की कृपा है, आप ही की देन हैं। हम इन्हें आप के ही समर्पित करते हैं। और हम दोनों हाथ जोड़ कर आप से प्रीति पूर्वक प्रार्थना करते हैं कि आप की कृपा और आप की दया सदैव हम पर बनी रहे और हम इन कर्मों की सहायता से और आप की कृपा से—

धर्म जो सत्य और न्याय का आचरण करता है।

अर्थ जो सत्य और न्याय से ही धन और ऐश्वर्य को प्राप्त करना है।

काम जो धर्म से की गई कमाई को अपने आत्मा की उन्नति में लगाना है। और

मोक्ष जो तीनों तापों से छूट कर पूर्ण आनन्द को पाना है। इन चारों साधनों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की शीघ्र से शीघ्र सिद्धि कराईये। आप हम पर सदा कृपा रखें और सदैव सुखी करें, क्योंकि जो हम लोग बुरे होंगे, तो उस की शोभा आप को नहीं होगी, सन्तानों के सुधारने मे ही पिता की बड़ाई होती है अन्यथा नहीं।

MANTRA (18) GURUMANTRA

Om Bhur Bhuvah Swah Tat Savitur Varenyam Bhargo Devasya Dhimahi Dhiyo Yo Nah Pracho Dayat.

Yajur Veda 36-3

God is Self-subsistent, All-knowledge and and All-bliss. We meditate on the All-pure effulgence of the maker of the Universe. May He guide our intellects on to the right path !

सब कुछ प्रभु के समर्पण कर चुकने के पश्चात केवल नमस्कार करना रह जाता है। उस नमस्कार को इस प्रकार करने का विधान है :

मंत्र १६ नमस्कार

ओ३म् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ।।

यजु १६।४१

पदच्छेदः—नमः। शम्भवाय। च। मयोभवाय। च।
नमः। शंकराय। च। मयस्कराय। च।
नमः शिवाय। च। शिवतराय। च ॥

हे कल्याण स्वरूप कल्याणकर ! आप "शंभव" हो, मोक्ष सुख स्वरूप और मोक्षसुख के करने वाले हो, आप को नमस्कार है। आप "मयोभव" हो, संसारिक सुख के करने वाले आप को मैं नमस्कार करता हूँ। आप "शंकर" हो, आप से ही जीवों का कल्याण होता है अन्य से नहीं। तथा "मयस्कर" अर्थात् मन इन्द्रीय प्राण और आत्मा के सुख करने वाले आप ही हो। आप "शिव" मंगलमय हों। तथा आप "शिवतर" अत्यन्त कल्याण स्वरूप और कल्याण कारक हों। इस से आप को हम वारम्वार नमस्कार करते हैं ।।

अनुष्ठान-- दोनों हाथों को जोड़कर और मस्तिक को झुका कर श्रद्धा पूर्वक इस मन्त्र का पाठ करें।

भावना:-- मैं श्रद्धा भक्ति से ईश्वर को नमस्कार करता हूँ, प्रभु मुझे कल्याणमय कर रहे हैं॥

॥ ओ३म्‌ शान्ति शान्ति शान्ति ॥

हे भगवन। हमें सर्व प्रकार की शान्ति दीजिये। आध्यात्मिक अर्थात अविधा द्वारा जो दु:ख होते हैं वह दूर हों।

आधिदैविक—जो जलवायु आदि द्वारा या इन्द्रियों द्वारा दु:ख होते हैं वह दूर हों।

आधिभौतिक—जो प्राणियों द्वारा दु:ख होते हैं वह दूर हों॥

MANTRA (19) NAMASKAR

Om Namah Shambhavaya Ch, Mayo Bhavaya Ch. Namah Shankaraya Ch, Mayaskaraya Ch. Namah Shivaya Ch, Shivtraya Ch.

Om Shanti, Shanti, Shanti

Our Salutation to Thee,
O, the peace incarnate,
O, the good incarnate,
O, the bestower of all happiness & peace,
O, the source of all bliss
O, the source of greater bliss

Peace, Peace, Peace, inside ourselves, among all living beings, in the entire Universe.
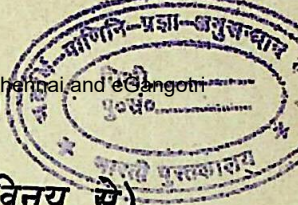
प्रार्थना (आर्याभिविनय से)

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः पृथिवी शन्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिब्रह्म शान्तिः सर्वं ँ शान्तिः शान्तिरेव: शन्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥

यजुः ३६।१७

हे सर्वदु:ख की शान्ति करने वाले ! सब लोकों के ऊपर जो आकाश है वह सर्वदा हम लोगों के लिये शान्त सुख कारक ही रहे। अन्तरिक्ष मध्यस्थ लोक और उन में स्थित वायु आदि पदार्थ, पृथ्वी, पृथिवीस्थ पदार्थ, जल जलस्थ पदार्थ, ओषधि तत्रस्थगुण, वनस्पति तत्रस्थ पदार्थ, विश्वे देवा:, जगत के सब विद्वान तथा विश्वद्योतक वेदमन्त्र, इन्द्रिय, सूर्यादि उन की किरण तत्रस्थगुण, ब्रह्म परमात्मा, तथा वेद शास्त्रस्थूल और सूक्ष्म, चराचर जगत, ये सब पदार्थ हमारे लिये, हे सर्वशक्तिमन परमेश्वर ! आप की कृपा से शान्त (निरुपद्रव) सदानुकूल सुखदायक हों मुझ को भी वह शान्ति प्राप्त हो, जिससे मैं भी आप की कृपा से शान्त दुष्ट क्रोधादि उपद्रव रहित होऊं तथा सब सांसारिक जीव भी उपद्रव रहित हों,

प्रार्थना

सुखी बसे संसार सब, दुखिया रहे न कोय।
यह अभिलाषा हम सब की, भगवन पूरी होय ।।

विद्या, बुद्धि, तेज, बल, सब के भीतर होय।
दूध, पूत, धन, धान्य से, वंचित रहे न कोय ।।

आप की भक्ति प्रेमसे, मन होय भरपूर।
राग द्वेष से चित हमारा, कोसों भागे दूर ।।

मिले भरोसा नाम का, हमें सदा जगदीश।
आशा तेरे धाम की, बनी रहे मम ईश ।।

पाप से हमें बचाइये, करके दया दयाल।
अपना भक्त बनाय कर, सब को करो निहाल ।।

दिल में दया उदारता, मन में प्रेम प्यार।
हृदय में धैर्य वीरता, सब को दो करतार ।।

नारायण तुम आप हो, पाप के मोचनहार।
क्षमा करो अपराध सब, कर दो भव से पार ।।

हाथ जोड़ विनती करुं, सुनिये कृपा निधान।
साध संगत सुख दीजिये, दया नम्रता दान ।।

दोहा

आठ प्रहर में घड़ी भर, जो करता प्रभु ध्यान।
वा का मन उन्नति करे, पावे पद कल्यान ।।
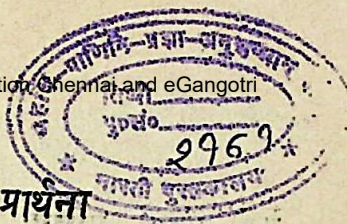
राष्ट्रीय प्रार्थना

हे जगदीश दयाल ब्रह्म सुनिये विनय हमारी।
हों ब्रह्मण उत्पन्न देश में कर्म धर्म व्रतधारी॥

क्षत्रिय हों रणवीर महारथी धनुर्वेद अधिकारी।
धेनू दूध वाली हों सुन्दर वृषभ तुंग बलधारी॥

हों तुरंग गति चपल अंगना हों सुरुप गुणवाली।
विजयी रथी पुत्र जनपद के रत्न तेज बलशाली॥

जब ही जब जग करे कामना जलधर जल बरसावे
फलें पकें बहु सुखद वनस्पति योगक्षेम सब पावें॥

सब वेद पढ़ें सुविचार बढ़ें बल पाय चढ़ें नित्य ऊपर को।
अविरुद्ध रहें, रिजु पन्थ गहें, परिवार कहें वसुधा भरको॥

ध्रुव धर्म धरें, पर दुःख हरें, तन त्याग तरें भवसागर को।
दिन फेर पिता. वरदे सविता, हम आर्य करें भूमण्डल को॥

हाथ जोड़ विनती करें सुनिये दीन दयाल।
तुम लग हमरी दौड़ है तुम ही हो रछपाल॥

दोहा

ओंकार सब सों प्रथम, मन में कीजे ध्यान।
जाके चिंतन किये तें, प्राप्त होये कल्याण॥

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

सब का भला करो भगवान, सब पर दया करो भगवान।
सब पर कृपा करो भगवान, सब का सब विध हो कल्याण॥

हे ईश सब सुखी हों, कोई न हो दुःखारी।
सब हों नीरोग भगवान, धन धान्य के भण्डारी॥
सब भद्रभाव देखें, सन्मार्ग के पथिक हों।
दुखिया न कोई होवे, सृष्टि में प्राणधारी॥

पुस्तक मिलने का पत्ता

वेदी प्रकाशन ट्रस्ट
१७ बी २४, देवनगर,
नई दिल्ली–५.